उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

MAJY-501

प्रथम सेमेस्टर

भारतीय ज्योतिष का परिचय एवं इतिहास-01

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

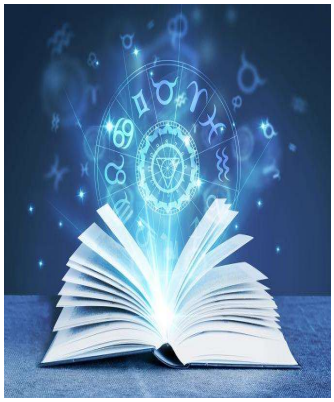

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड - फरवरी 2020

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल - (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
ज्योतिष विभागाध्यक्ष, सं0वि0ध0वि संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, LBS, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**, हल्द्वानी	**1/2**	**1,2,3,4,5/1**
डॉ. प्रवेश व्यास असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वास्तुशास्त्र विभाग श्रीलालबहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	**2**	**2,3,4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष-2020
प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: -
ISBN NO. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

MAJY-501- प्रथम सेमेस्टर

भारतीय ज्योतिष का परिचय एवं इतिहास - 01

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – ज्योतिष शास्त्र का उद्भव एवं विकास	**पृष्ठ - 2**
इकाई 1: ज्योतिष शास्त्र का परिचय	3 -16
इकाई 2: ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास	17-33
इकाई 3: ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता एवं वेदांग ज्योतिष	34-51
इकाई 4: ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक एवं आचार्य	52-64
इकाई 5 : ज्योतिष शास्त्र का ऐतिहासिक विवेचन	65-84
द्वितीय खण्ड - ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख अंग	**पृष्ठ- 85**
इकाई 1: त्रि- पंच बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष विवेचन	86-98
इकाई 2: प्रमुख स्कन्ध – सिद्धान्त	99-119
इकाई 3: प्रमुख स्कन्ध – होरा	120-139
इकाई 4: प्रमुख स्कन्ध – संहिता	140-158

एम.ए.(ज्योतिष)

(MAJY-20)

प्रथम सेमेस्टर - प्रथम पत्र

MAJY-501

भारतीय ज्योतिष का परिचय एवं इतिहास-01

खण्ड - 1

ज्योतिष शास्त्र का उद्भव एवं विकास

इकाई – 1 ज्योतिष शास्त्र का परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ज्योतिष शास्त्र : सामान्य परिचय

1.3.1 ज्योतिष की परिभाषा व स्वरूप

1.3.2 ज्योतिष शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास

1.4 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख स्कन्ध

1.4.1 ज्योतिष की उपयोगिता

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आप लोगों को ज्योतिषशास्त्र के प्रति आकर्षण एवं जिज्ञासा का भाव होने के कारण ही आप इस शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। प्रस्तुत इकाई प्रथम सेमेस्टर के MAJY-501 के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई 'ज्योतिष शास्त्र का परिचय' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे '**ज्योतिषशास्त्र**' कहा जाता है।

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक वेद का अंग होने के कारण 'वेदांग' कहा गया है। वेद के छ: अंग हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष । इन्हीं वेदांगों को 'शास्त्र' भी कहा जाता है। यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन हैं। कालनियामक होने के कारण इसे 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ज्योतिषशास्त्र से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत तथ्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ बता सकेंगे कि ज्योतिष किसे कहते है।
- ❖ समझा सकेंगे कि ज्योतिषशास्त्र का इतिहास क्या हैं।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्कन्धों को समझ लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्त्तकों का नाम जान लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

1.3 ज्योतिषशास्त्र : सामान्य परिचय

ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म–जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है। इसलिए ज्ञात – अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र का दूसरा नाम '**कालविधान शास्त्र**' है। क्योंकि काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। काल के प्रभाव के सम्बन्ध में 'कालाधीनं जगत् सर्वम्' तथा 'काल: सृजति भूतानि

काल: संहरते प्रजा:' ये सूक्तियाँ ही पर्याप्त हैं। मानव जीवन काल तथा कर्म के अधीन होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य का जन्म, उसकी प्रवृत्तियाँ तथा उसके भाग्य का निर्माण होता हैं। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में 'वेद' को सर्वविद्या का मूल कहा गया है। उसी वेद के चक्षुरूपी अंग को मनीषीयों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। आचार्य भास्कराचार्य ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में ज्योतिष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि -

वेदस्य निर्मलं चक्षु: ज्योतिषशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त्तं कर्मं न सिद्धयति।।

अर्थात् ज्योतिष वेद का निर्मल चक्षु है, जो अकल्मष (दोषरहित) है और इसके ज्ञानाभाव में समस्त वेदप्रतिपाद्य विषय यथा– श्रौत, स्मार्त्त यज्ञादि क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। सर्वसाधारण को सृष्टि के अनेक चमत्कारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होकर उनकी जिज्ञासा पूरी हो सके, इस हेतु हमारे देश के अलौकिक बुद्धिमान, महान तपस्वी व त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपने तपोबल के आधार पर आम जनमानस के लाभार्थ जो अनेक शास्त्र निर्माण किये, उनमें ज्योतिषशास्त्र का स्थान सर्वश्रेष्ठ व प्रथम है क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति, प्रगति व लयादि कालाधीन है और उस काल का सम्पूर्ण वर्णन तथा शुभाशुभ परिणाम आकाशस्थ ग्रहों के उदय,अस्त,युति, प्रतियुति, गति व स्थिति पर निर्भर है। इन्हीं ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति पर जगत के मानव प्राणी का सुख–दु:ख, हानि– लाभ, जीवन-मरण पूर्णरूप से अवलम्बित है। अत: ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान मानव के लिये अधिक महत्वपूर्ण है।

ज्योतिषशास्त्र में मूलत: ग्रह, नक्षत्र, तारा, उल्का आदि के विषय में सांगोपांग अध्ययन किया जाता है। इस ब्रह्माण्ड में जो भी चराचर जीव हैं उनमें पंचमहाभूत, तीनों गुण (सत्व, रज, तम) सात प्रकार की धातुएँ आदि ग्रहनक्षत्रादि के प्रभाव से रहते है। इनमें से किसी में पार्थिव तत्व अधिक पाया जाता है तो किसी में जल, किसी में अग्नितत्व कहीं वायु का अंश अधिक होता है तो कहीं आकाश का भाग अधिक होता है। किसी जातक में सत्वगुणी ग्रहों के प्रभाव से रजोगुण अधिक होता है। किसी का शरीर मांसल होता है, किसी में अस्थि की प्रधानता होती है तो किसी का केशाधिक्य होता है। इन सभी परिस्थितियों का कारण ग्रहयोगबल है। जिस जातक का जैसा प्राक्तन कर्म रहता है वह उस तरह के ग्रहयोग में उत्पन्न होकर जीवन भर कर्मानुसार शुभाशुभ फल का भोग करता रहता है। इन

विषयों से सम्बद्ध सिद्धान्तों का ऋषि- महर्षियों ने प्रवर्तन किया। इनकी परम्पराओं का कालक्रम में परवर्ती आचार्यों ने पोषण किया और विकास के क्रम में विषय की दृष्टि से ज्योतिष शास्त्र को तीन स्कन्धों सिद्धान्त, संहिता, होरा में विभाजित किया। आज भी इस शास्त्र के आचार्य एवं जिज्ञासु विद्वान इसके संवर्द्धन में सतत तत्पर हैं।

1.3.1 ज्योतिष की परिभाषा व स्वरूप

ज्योतिषशास्त्र का क्षेत्र इतना विहंगम है कि उसे एक वाक्य में परिभाषित करना सरल नहीं, तथापि विद्वानों ने इसे अलग–अलग रूप में परिभाषित किया है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रहपिण्डों एवं नक्षत्रपिण्डों की गति, स्थिति तथा उसके प्रभावादि का निरूपण जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता हैं, उसे 'ज्योतिष' कहते है अर्थात् जिस शास्त्र में सूर्यादि ग्रहों की गति, स्थिति सम्बन्धि समस्त नियम, एवं उसके भौतिक पदार्थो के उपर पड़ने वाला प्रभाव का वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण किया जाता है, उसे 'ज्योतिषशास्त्र' कहते है। वेद का अंग होने के कारण इसे 'वेदांग' भी कहा जाता है। संक्षिप्त रूप में ज्योतिष को इस प्रकार से भी परिभाषित करते है - **'ग्रहगणितं ज्योतिषम्'।** अर्थात् ग्रहों का गणित जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है उसे 'ज्योतिष' कहते है। इसी प्रसंग में 'ज्योतिष' एवं 'ज्यौतिष' दो शब्दों की उपलब्धि होती है, परन्तु समस्त प्राचीन ग्रन्थों में 'ज्योतिष' शब्द को देखकर विद्वानों ने इसी को व्यवहार में वर्णित किया है। 'ज्यौतिष' शब्द आधुनिक ज्योतिर्विदों की कल्पना है। व्याकरणदृष्ट्या दोनों ही सही है। 'द्यतेदीप्तौ' धातु से प्रकाश अर्थ में ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जहाँ ''द्यतेऋषीनाद्यौश्च य:'' सूत्र से जकार होता है। वेद के साथ ही इस शास्त्र का आविर्भाव होने के कारण इसका वेदांग होना भी प्रामाणिक है। वेद में विश्व के समस्त विषयों व नियमों का उल्लेख है, इससे इतर कोई भी विषय नहीं हैं। परन्तु सामान्यतया वेद के मुख्य प्रयोजन है – यज्ञसम्पादन क्रिया, और यह कार्य वेदवाक्यांश के आधार पर कालाधीन है। अर्थात् कालविशेष में की जाने वाली याज्ञिक क्रिया सफल होती है। कालनिर्धारण ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही सम्भव है, अन्य किसी शास्त्र के द्वारा नहीं। इसीलिए भास्कराचार्य जी का भी कथन है –

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता: यज्ञा: प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यत: स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्।।

इस आधार पर ज्योतिष की परिभाषा इस प्रकार भी करते हैं –

'वेदचक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषम्'।

अर्थात् निश्चयेन ज्योतिष वेद का चक्षु रूपी अंग है। वेद का अंग होने से यह 'वेदांग' है।

यज्ञादि कर्मों के द्वारा भगवदोपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अत: इसे वेदांग की संज्ञा दी गई है। व्याकरण, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा और छन्द ये छ: वेद के अंग कहे गये हैं। जिनमें ज्योतिषशास्त्र नेत्र रूप में प्रसिद्ध है। वर्तमान काल की घटनाओं को नेत्र से देखा जा सकता है किन्तु भूत और भविष्य का दर्शन तो केवल वेद के चक्षु रूप ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही सम्भव है।

ज्योतिषशास्त्र के मुख्य रूप से तीन स्कन्ध है -

1. सिद्धान्त 2. संहिता 3. होरा या फलित

स्पष्टार्थ चक्रम् -

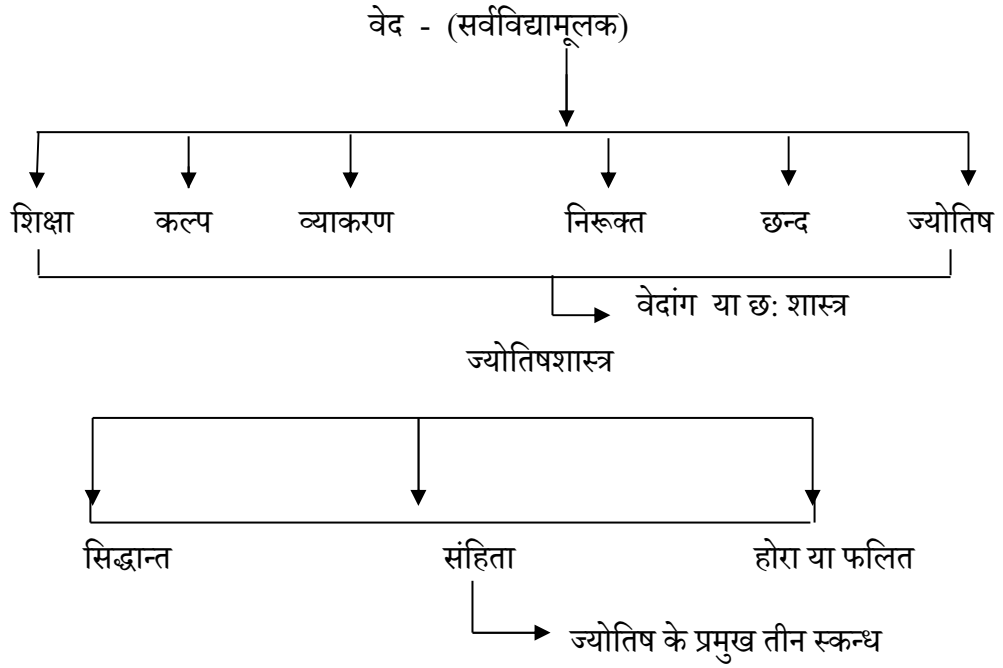

वर्तमान ज्योतिषशास्त्र का जो स्वरूप हमें देखने को मिलता है, उसका श्रेय महात्मा लगध को जाता है। उन्होंने ही 'वेदांग ज्योतिष' की रचना करने ज्योतिष को स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादित किया। यद्यपि ज्योतिष आज भी वहीं है, जो पूर्व में था, केवल काल भेद के कारण इसके स्वरूपों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भगवान सूर्य के अंशावतार ने भी सूर्यसिद्धान्त में यही कहा है कि –

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलः।।

1.3.2 ज्योतिषशास्त्र का इतिहास

ज्योतिषशास्त्र का इतिहास ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के साथ ही प्रारम्भ होता है तथा ब्रह्माण्ड की स्थिति पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से गतिमान रहता है। अनन्त आकाश में विद्यमान अनन्त ज्योतिषपिण्डों का ज्ञान अभी तक मनुष्य नहीं कर पाया है। मनुष्य की अपनी सीमा है आकाश निःसीम है फिर भी मनुष्य ने अन्तरिक्ष के अनेक रहस्यों को सुलझाने में सफलता प्राप्त की है तथा आगे भी सतत् प्रयत्नशील है। ब्रह्माण्ड अथवा अन्तरिक्ष से जुड़े हुये अनेक ऐसे प्रश्न है जो निश्चयात्मक रूप से आज तक नहीं सुलझ सके है । भगवान भास्कर ने स्वयं ही अनेक रहस्यों का उद्घाटन करते हुये ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी अनेक शंकाओं का समाधान किया है तथा ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी अत्यन्त गूढ़ ज्ञान दिया है। भारतीय प्राचीन विज्ञानों में अन्य विज्ञानापेक्षया ज्योतिष अत्यन्त प्राचीन विज्ञान है। वैदिककाल से ही इस शास्त्र का महत्व व उपयोगिता की अनुभूति हम करते आ रहे हैं। गणित, अन्तरिक्ष, भूगर्भ, कृषि, वृष्टियादि विभिन्न विज्ञानों का सर्वप्रथम प्रायोगिक तौर पर विवेचन ज्योतिषशास्त्र द्वारा किये जाने के कारण विश्व में इस शास्त्र की प्रतिष्ठा स्थापित है।

शास्त्रीयदृष्टया ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के द्वारा कही गई है। मतान्तर से यह भी माना जाता है कि प्रथमपुरूष हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा ने ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान लेकर नारद को प्रदान किया था। ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद के काल से ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति मानी गई है। यद्यपि इस कालखण्ड में ज्योतिषशास्त्र का कोई भी स्वतन्त्रग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता हैं, परन्तु ज्योतिष शास्त्र के अनेक विषय वेदों के मन्त्र भाग एवं संहिता भाग से ग्रहण किये गये हैं। 'ओरायन' नामकग्रन्थ में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महोदय ने ऋग्वेद का काल ई0 पू0 4500 माना है, जबकि 'वैदिकसम्पत्ति' नामक ग्रन्थ में पं. रघुनन्दनशर्मा ने ऋग्वेद का रचना काल न्यूनातिन्यून 22,000 ई0पू0 माना है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र का कालखण्ड भी इसी वेद के समान होगा। वस्तुतः ऋग्वेद का कालखण्ड निर्धारण करना सर्वथा दुष्कर है, परन्तु यह भी सत्य है कि सृष्टि की आदि से मानवजाति का मार्गदर्शक वेद ही था। इसी प्रकार विभिन्न इतिहासकार एवं प्राचीन साहित्य के रचयिता भी यह कहते हैं कि ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ काल से ही हुआ हैं। उस काल में मानव वन के जीव–जन्तुओं के साथ ही वन में रहते थे। मानव जीव- जन्तुओं के साथ सूर्योदय एवं सूर्यास्त की

स्थिति को देखकर उसे समझने का प्रयास करता रहा होगा। कालान्तर में शनै: शनै: ज्योतिषशास्त्र का व्यवहार दैनिक जीवन में भी अपरिहार्य रूप से हुआ। आचार्य कमलाकर भट्ट ने स्वग्रन्थ सिद्धान्ततत्वविवेक में ज्योतिषशास्त्र के ज्ञानोपदेश का उल्लेख इस प्रकार किया है –

सर्वप्रथम ब्रह्मा से ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की उत्पत्ति हुई तत्पश्चात् ब्रह्मा के द्वारा नारद को ज्योतिष का ज्ञान प्रदान की गयी। इसी प्रकार क्रमश: चन्द्रमा ने शौनकादि ऋषियों को, नारायण ने वशिष्ठ एवं रोमक को, वशिष्ठ ने माण्डव्य को तथा सूर्य ने मय को ज्योतिषशास्त्र का ज्ञानोपदेश दिया था। इसका मूल श्लोक ग्रन्थ में इस प्रकार निरूपित है –

ब्रह्मा प्राह च नारदाय, हिमगुर्यच्छौनकायामलं
माण्डव्याय वशिष्ठसंज्ञकमुनि: सूर्यो मयायाह यत्।

आचार्य कश्यप के अनुसार ज्योतिषशास्त्र के अष्टादश प्रवर्त्तकों का उल्लेख इस प्रकार है –

सूर्य: पितामहो व्यासो वशिष्ठोऽत्रि पराशर:।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मुनिरंगिरा:।।
लोमश: पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगु:।
शौनकोष्टादशश्चैते ज्योति: शास्त्रप्रवर्त्तका:।।

सूर्य, पितामह,वेदव्यास,वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि,मनु,अंगिरा,लोमश, पौलिश,च्यवन, यवन, भृगु तथा शौनकादि अष्टादश महर्षियों को ज्योतिषशास्त्र का प्रवर्त्तक कहा गया है।

ज्योतिषशास्त्र भारतीय विद्या का महत्वपूर्ण अंग है, विशेषकर इसलिए कि एक ओर तो आचार्यों ने इसे पराविद्या की कोटि में ला दिया और और दूसरी ओर इसका प्रवेश सर्वसाधारण के जीवन में इस सीमा तक व्याप्त होगा कि शुभ घड़ी, लग्न और मुहूर्त-शोधन दैनन्दिन जीवन के अंग बन गये। पंचांग के तत्त्वों का ज्ञान चाहे सर्वसाधारण को भी न हो किन्तु ज्योतिषियों द्वारा नियोजित अनेकों पंचांग उत्तर में और दक्षिण में अपनी-अपनी पद्धिति के अनुसार प्रचलित हैं, मान्य हैं। राशि-फल का तो वैज्ञानिक कहे जानेवाला आज के युग में इतनी व्यापकता से प्रसार हो गया है कि अनेक 'बौद्धिक' व्यक्ति भी पत्र-पत्रिकाओं के 'भविष्य-फल' वाले अंश को खुले तौर पर, और कुछ लोग प्रच्छन्न रूप से देख लेते हैं। विशिष्ट धातु-निर्मित और नगीनों-जड़ी मुद्रिकाओं के प्रभाव को कुछ लोग भी कभी-कभी मानते देखे गये हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. ज्योतिष वेद का चक्षुरूपी अंग है।
2. ज्योतिष को कालशास्त्र भी कहा जाता है।
3. शास्त्रों की संख्या पाँच हैं।
4. वैदिकसम्पत्ति नामक ग्रन्थ का लेखक बालगंगाधर तिलक है।
5. महर्षि पराशर ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक है।
6. ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन स्कन्ध हैं।
7.

1.4 ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्कन्ध

यद्यपि विषयदृष्ट्यानुशीलन के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु मुख्य रूप से इसके तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं - सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। आचार्य नारद ने भी कहा है कि –

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योति: शास्त्रमनुत्तमम्॥

आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ वृहत्संहिता में स्कन्धत्रय का उल्लेख करते हुये लिखा है – **''ज्योतिश्शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्ध त्रयाधिष्ठितम्''।** कुछ अन्य आचार्यों के मत में उक्त तीनों सिद्धान्तों के अतिरिक्त केरलि एवं शकुन को भी ज्योतिष के स्कन्धों में स्थान दिये गये है। उनके मतानुसार ज्योतिष के पंचस्कन्ध है। यथा –

पंचस्कन्धमिदं शास्त्रं होरागणितसंहिता।
केरलि: शकुनञ्चेति ज्योतिषशास्त्रमुदीरितम्॥

परन्तु यह मत सर्वस्वीकृत नहीं है। वस्तुत: शकुन – केरलीय – प्रश्न - मुहूर्त्त – अंगविद्या- स्वर – वास्तु - ताजिक – रमल इत्यादि विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही आते हैं। अन्यथा यदि प्रत्येक का अलग – अलग स्कन्ध माना जायेगा तो अनेक स्कन्ध हो सकते हैं। अत: ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन ही स्कन्ध होते हैं।

1. **सिद्धान्त** - ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर प्रलय काल पर्यन्त की गई काल गणना, मानव – दैव – जैव – पैत्र – नाक्षत्र – सौर – सावन – चान्द्र तथा ब्राह्मादि नवविध काल मानों का सांगोपांग कथन, ग्रहों के मध्य- मन्दस्फुटगति - स्थित्यादि का निरूपण, व्यक्ताव्यक्त गणित, त्रिकोणमितिय गणितोपपादन, तत्सम्बन्धी प्रश्नों का सोत्तर

संकलन, वेधोपयुक्त यन्त्रादि विषयों का निरूपण हो उसे 'सिद्धान्त' कहते है। इसे श्लोकबद्ध रूप में आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' में इस प्रकार प्रतिपादित किया है –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेद: क्रमा
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथासोत्तरा:।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्त: स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधै:।।

2. **संहिता** - ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहचारवश ग्रह- नक्षत्रादि बिम्बों के शुभाशुभ लक्षण से पशु – पक्षी- कीटादियों का भूसापेक्ष सामूहिक विवेचन तथा प्राकृतिक – आकाशीय घटनाओं का ज्ञान किया जाता हो, उसे 'संहिता शास्त्र' कहते हैं। वृहत्संहिता में वराहमिहिर का कथन है -''**तत्कात्सन्र्योपनयस्य नाममुनिभि: संकीर्त्यते संहिता''।**
3. **होरा** – जिस स्कन्ध में मानव मात्र का उसके जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् उसके जीवन सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का विवेचन किया जाता है, उसे 'होरा' कहते हैं।

अन्य स्कन्ध –

प्रश्न शास्त्र – यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। इसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है। ईसवी सन् 5 वीं और 6 ठी शती में केवल प्रश्न पूछने वाले के उच्चारित अक्षरों पर से फल बतलाना ही प्रश्नशास्त्र के अन्तर्गत था, लेकिन आगे जाकर इस शास्त्र में तीन सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ – 1. प्रश्नाक्षर सिद्धान्त 2. प्रश्न लग्न सिद्धान्त और 3. स्वर विज्ञान सिद्धान्त। दिगम्बर जैन ग्रन्थों की अधिकतर रचनाएँ दक्षिण भारत में होने के कारण प्राय: सभी प्रश्न ग्रन्थ प्रश्नाक्षर सिद्धान्त को लेकर निर्मित हुए हैं। अन्वेषण करने पर स्पष्ट मालूम होता है कि केवल ज्ञानप्रश्नचूड़ामणि, चन्द्रोन्मीलन प्रश्न, आयज्ञानतिलक, अर्हच्चूडामणि आदि ग्रन्थों के आधार पर ही आधुनिक काल में केरल प्रश्नशास्त्र की रचना हुई है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा के समय से प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्त का प्रचार भारत में तीव्र गति से से हुआ है। 9वीं, 10वीं और 11वीं शती में इस सिद्धान्त को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर मिला है, जिससे अनेक स्वतन्त्र रचनाएँ भी इस विषय पर लिखी गयी हैं। इस शास्त्र की परिभाषा में उत्तर मध्यकाल तक अनेक संशोधन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। चर्या, चेष्टा, हाव-भाव

आदि के द्वारा मनोगत भावों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भी इस शास्त्र के अन्तर्गत आ गया है।

शकुन – इसका अन्य नाम निमित्त शास्त्र भी प्राप्त होता है। पूर्वमध्यकाल तक इसने पृथक् स्थान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु संहिता के अन्तर्गत ही इसका विषय आता था। ईसवी सन् की 10वीं, 11वीं, और 12वीं शतियों में इस विषय पर स्वतन्त्र विचार होने लग गया था, जिस कारण इसने अलग शास्त्र का रूप ले लिया। वि0सं0 1089 में आचार्य दुर्गदेव ने अरिष्ट विषय को भी शकुनशास्त्र में सम्मिलित कर दिया था। कालान्तर में इस शास्त्र की परिभाषा और भी अधिक विकसित हुई और इसकी विषय सीमा में प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभों का ज्ञान प्राप्त करना भी आ गया। वसन्तराजशकुन, अद्भुतसागर जैसे शकुन – ग्रन्थों का निर्माण इसी परिभाषा को दृष्टि में रखकर किया प्रतीत होता है।

1.4.1 ज्योतिष की उपयोगिता -

ज्योतिषशास्त्र मानव जीवन के लिए प्रत्येक क्षेत्र में सहयोगी एवं कल्याणकारी है। यह मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसके साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। विश्व के समस्त कार्य कालाधीन है। ज्योतिषशास्त्र कालनियामक होने के कारण सर्वप्रथम काल निर्धारण में मानव मात्र के लिये सहायक व उपयोगी है।

मानव जीवन में कर्म सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कर्म का विवेचन करते हुए कर्मविपाकसंहिता कहती है –

कर्मणा नरकं सूत स्वर्गं याति च कर्मणा।
देवत्वं प्राप्नुयाज् जीवो राक्षसत्वं च कर्मणा।।
कर्मणा बन्धमायाति मोक्षमायाति कर्मणा।
कर्मणा पतनोच्छ्रायौ नृणां जन्मनि – जन्मनि।।

इन सिद्धान्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य अपने कर्मों के अधीन अपने भविष्य का निर्माण करता है। जब हम शरीर के केवल सुख और दु:ख का विचार करते हैं तो सर्वप्रथम मनुष्य की आयु तथा स्वास्थ्य का प्रश्न सामने आता है। पंचस्वरा: नामक ग्रन्थ में लिखा भी है –

''पूर्वमायु: परीक्ष्येत ततो लक्षणमादिशेत् ।।''

अर्थात् जब मनुष्य का जीवन रहेगा तभी वह अपने शारीरिक सुखों एवं दु:खों का उपयोग करेगा। 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' यह उक्ति स्पष्ट दर्शाती है कि व्याधियों का स्थान शरीर ही है। व्याधियाँ शरीर नष्ट होने के बाद भी जीव का साथ नहीं छोड़ती है। ये अन्य जन्मों में भी शारीरिक कष्ट देती रहती है।

इसलिए आचार्यों ने कहा है– ''कर्मजा व्याधय:केचि त्दोषजा: सन्ति चापरे'' अर्थात् कुछ व्याधियाँ कर्मों के कारण होती हैं तथा कुछ वात, पित्त, कफ आदि दोषों के कारण होती हैं। इसी प्रकार शरीर में प्रमुख रूप से तीन प्रकार की व्याधियॉ होती हैं– साध्य, असाध्य एवं याप्य। प्रत्येक क्षेत्र का उल्लेख तो प्रस्तुत इकाई में करना सम्भव नहीं होगा, किन्तु मुख्य रूप से मानव जीवन में व्यावहारिक दृष्टिकोण से निम्नलिखित क्षेत्र में ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता परिलक्षित होती है –

1. गर्भ निर्धारण में
2. आयु निर्धारण में
3. नामकरण, विद्यारम्भ, व्रतबन्ध, चूड़ाकर्म आदि अनेक प्रमुख संस्कारों में
4. विवाह, सन्तानोत्पत्ति आदि में
5. आजीविका में
6. चिकित्सा में
7. यात्रा में
8. गृहनिर्माण / गृहप्रवेश में
9. वास्तु सम्बन्धी विचारों में
10. पर्यावरण, कृषि, प्राकृतिक - आपदा, वैश्विक स्थिति, समर्घ – महर्घ, वृष्टि, शकुन आदि विचारों में।

इनके अतिरिक्त ज्योतिष एक सार्वभौमिक विज्ञान है, जो मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से प्रत्यक्षतया जुड़ा हुआ है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख ..... स्कन्ध हैं।
2. वृहत्संहिता के रचयिता ..... है।
3. वेदस्य निर्मलं चक्षु: ..... कथ्यते।
4. विश्व के समस्त कार्य ..... के अधीन होते हैं।
5. कर्मणा नरकं सूत ..... याति च कर्मणा।
6. ..... परीक्ष्येत ततो लक्षणमादिशेत्।
7. मानव शरीर में मुख्यत: व्याधियों के ..... प्रकार हैं।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म–जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है। इसलिए ज्ञात– अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र का दूसरा नाम **'कालविधान शास्त्र'** है। क्योंकि काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे **'ज्योतिषशास्त्र'** कहा जाता है। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक 'वेद' का अंग होने के कारण 'वेदांग' कहा गया है। वेद के छ: अंग हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। इन्हीं वेदांगों को 'शास्त्र' भी कहा जाता है। यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन है। इसके मुख्यत: तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इस शास्त्र का प्रथम उपदेश ब्रह्मा जी ने नारद को दिया था। कश्यप संहिता के अनुसार इसके सूर्य से लेकर शौनकादि पर्यन्त अष्टादश प्रवर्त्तक हुये हैं। इसका इतिहास ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ आरम्भ होकर उसके अवसान पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से गतिमान हैं। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यह शास्त्र उससे प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। मानव के व्यावहारिक जीवन में उसके प्रत्येक कार्यों में ज्योतिषशास्त्र का योगदान स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

ज्योतिष – वेद के चक्षुरूपी अंग को ऋषियों के द्वारा 'ज्योतिषशास्त्र' की संज्ञा प्रदान की गयी। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे 'ज्योतिषशास्त्र' कहा जाता है।

सिद्धान्त - त्रुट्यादि से प्रलयकाल पर्यन्त की गई काल गणना जिस स्कन्ध में हो, उसे सिद्धान्त कहते हैं।

संहिता – ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहचारवश ग्रह- नक्षत्रादि बिम्बों के शुभाशुभ लक्षण से पशु – पक्षी- कीटादियों का भूसापेक्ष सामूहिक विवेचन, प्राकृतिक – आकाशीय घटनाओं का ज्ञान किया जाता हो, उसे 'संहिता शास्त्र' कहते हैं।

होरा – जिस स्कन्ध में मानव मात्र का उसके जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् उसके जीवन सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का विवेचन किया जाता है, उसे होरा कहते हैं।

ग्रह – गच्छतीति ग्रह:। आकाशस्थ वह पिण्ड जिसमें गति हो और जो चलायमान हो उसे ग्रह कहते हैं।

नक्षत्र – न क्षरतिति नक्षत्रम्। आकाशस्थ वह पिण्ड जो चलता नहीं नक्षत्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में तारों के समूह को भी नक्षत्र कहा जाता है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परम्परा में षड् वेदांग कहे गये है। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. तीन 2. वराहमिहिर 3. ज्योतिषम् 4. काल 5. स्वर्गम् 6. पूर्वमायु: 7. तीन

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय, लघुजातक (2005) – प्रथम अध्याय – श्लोक संख्या – 3 , चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी।

(ख) मूल लेखक – आचार्य भास्कराचार्य, टीकाकार – पं0 सत्यदेव शर्मा , सिद्धान्तशिरोमणि (2011) – प्रथम अध्याय – श्लोक संख्या – 9, 11, चौखम्भा संस्कृत भवन / चौखम्भा साहित्य सीरिज , वाराणसी।

(ग) मूल लेखक – कमलाकर भट्ट , टीकाकार – कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सिद्धान्ततत्वविवेक (1996) , श्लोक संख्या - 65, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत भवन / चौखम्भा साहित्य सीरिज , वाराणसी।

(घ) लेखक: - डॉ0 विनय कुमार पाण्डेय, ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा (2013) – ज्योतिषशास्त्रस्य संक्षिप्त परिचय:,पृष्ठ संख्या – 5,6,7,8, । चौखम्भा संस्कृत भवन / चौखम्भा साहित्य सीरिज, वाराणसी।

(ड.) लेखक – प्रोफे0 रामचन्द्र पाण्डेय, सूर्यसिद्धान्त (2002) - मध्यमाधिकार:, श्लोक संख्या - 9 चौखम्भा संस्कृत भवन / चौखम्भा साहित्य सीरिज , वाराणसी।

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

लघुजातक – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

वृहज्जातकम् - डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की परिभाषा लिखते हुये विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ज्योतिष के स्कन्धों का उल्लेख कीजिये।
3. ज्योतिष के इतिहास का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।
4. इस इकाई के अध्ययन के आधार पर अपने शब्दों में ज्योतिषशास्त्र पर निबन्ध लिखिये।
5. ज्योतिष की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति
2.4 ज्योतिष का विकास – विभिन्न काल क्रम के आधार पर
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्द
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-501 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास। इसके पूर्व की इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के उत्पत्ति एवं विकास के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही हुआ है, तथा सृष्टि के प्रलय पर्यन्त यह अविच्छिन्न रूप से गतिमान है, अर्थात् ज्योतिष शाश्वत है। कालखण्ड के आधार पर इसके रूप में परिवर्तन परिलक्षित होता रहा है।

आइए इस इकाई में ज्योतिष के मूलोत्पत्ति के साथ उसके कालक्रम के आधार पर उसके विकास का अध्ययन करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिष के मूलोत्पत्ति सम्बन्धी तत्वों को जान जायेगें।
- काल क्रम के आधार पर ज्योतिष शास्त्र के विकास से परिचित हो जायेंगे।
- वैदिक काल से लेकर अर्वाचीन काल तक ज्योतिष की स्थिति का अवबोधन हो जायेगा।
- ज्योतिष शास्त्र के उत्पत्ति और विकास का ज्ञान हो जायेगा।

2.3 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति

ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति का मूल 'वेद' है। ज्योतिशास्त्र वैदिककालीन ऋषि-महर्षियों की अलौकिक प्रतिभा की देन है। भारतीय विद्याओं में इसका स्थान अद्वितीय है। मनुष्य की संरचना और उसकी प्रकृति का इससे अभिन्न सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मन्दाकिनियाँ, निहारिकाएं एवं चराचर प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। इन ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं, तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनःसंस्थानों पर कार्य करते हैं और उसकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन और उपयोग से ज्योतिषी को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

प्रारम्भिक काल में ज्योतिष अध्यात्म-विज्ञान की ही एक शाखा थी। यह चतुर्दश विद्या में एक माना जाता है। जिसका स्वरूप स्पष्टतः धर्मविज्ञान पर आधारित था। अपने इसी रूप में इसने चाल्डियन एवं मिश्री धर्मों तथा प्राचीन भार, चीन एवं पश्चिमी यूरोप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उस समय इसकी विश्वसनीयता असंदिग्ध मानी जाती थी और उसका प्रचार-प्रसार विश्व के समस्त भागों पर था, परन्तु मध्यकाल में ज्योतिष पर अनेकों आघात हुए और अल्पज्ञ तथा स्वार्थी लोगों के हाथों पहुँच जाने पर इस विद्या के जानने वालों की अवनति हुई। ज्योतिष की मूलभूत तत्वमीमांसा एवं उसके आध्यात्मिक तत्वदर्शन से उस समय के ज्योतिषी बहुत अंशों में अनभिज्ञ थे। उन्होंने ज्योतिर्विद्या के केवल उन सिद्धान्तों पर अमल किया, जिसका मेल नए यांत्रिक भौतिक विज्ञान के तथ्यों से बैठता था। उस समय केवल वहीं सिद्धान्त मान्य रहे जो दृश्य जगत की बाह्य भौतिक घटनाओं एवं तथ्यों पर आधारित थे। 'केपलर' के ज्योतिष विज्ञान को ग्रहों की चाल पर आधारित मानने के कारण भी ज्योतिष विज्ञान के अध्येताओं की दुर्गति हुई।

वास्तव में इस विद्या के सिद्धान्तों का सुदृढ़ आधार अभौतिक एवं आध्यात्मिक है। इसे भौतिक यंत्रवाद और मात्र ग्रहों-तारों-राशियों एवं भावों का निर्धारण करने वाले एवं व्यवस्था-क्रम दर्शन वाले खगोलीय विज्ञान के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इस शास्त्र के आविष्कर्ता भारतीय महर्षि रहे हैं, जो अलौकिक आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न थे। वह अपने तपोबल के आधार पर नेत्र बन्द करते ही तीनों काल की स्थितियों को भली-भाँति समझ लेते थे। उनकी दूरदृष्टि अलौकिक हुआ करती थी।

योग-विज्ञान जो कि भारतीय आचार्यों की विभूति माना जाता है, इसका पृष्ठाधार है। यहाँ ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमण्डल के दर्शन किए और अपना निरीक्षण कर आकाशीय सौर मण्डल की व्यवस्था की। अंकविद्या जो इस शास्त्र का प्राण है, उसका आरम्भ भी भारत में ही हुआ। मध्यकालीन भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक में श्री ओझा ने लिखा है, "भारत ने अन्य देशवासियों को जो अनेक बातें सीखायीं, उनमें सबसे अधिक महत्व अंकविद्या का है। संसार भर में गणित, ज्योतिष, विज्ञान आदि की आज जो उन्नति पायी जाती है, उसका मूल कारण वर्तमान अंक क्रम है। जिसमें १ से ९ तक के अंक और शून्य इन १० चिह्नों से अंक-विद्या का सारा काम चल रहा है। यह क्रम भारतवासियों ने ही निकाला और उसे सारे संसार ने अपनाया।''

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल में भारतीय ऋषि खगोल एवं ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान रखते थे। कतिपय विद्वान भारतीय ज्योतिष में ग्रीक प्रभाव मानते हैं, परन्तु विचार करने पर

वास्तविकता कुछ भिन्न नजर आती है। प्राचीन भारत में ग्रीस देश से अनेक विद्यार्थी विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए आते थे और वर्षों रहकर भारतीय आचार्यों से भिन्न-भिन्न शास्त्रों का अध्ययन करते थे। जिससे अधिक सम्पर्क के कारण कुछ शब्द ई. पूर्व तीसरी शती में, कुछ छठी शती में, कुछ १५-१६ वीं शती में ज्योतिष में मिल गए। भारत के ज्योतिर्विद् ईसवी सन की चौथी और ५वीं शती में ग्रीस गए। इससे भी ५वी और छठी शती के प्रारम्भ में अनेक ग्रीक शब्द भारतीय ज्योतिष में आ गए।

समस्त विश्व ने भारत से जो अगणित-अनगिनत अजस्र अनुदान पाए, उसमें ज्योतिष का स्थान अद्वितीय है। डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर ने इण्डियन गजेटियर में स्पष्ट रूप से लिखा है कि - ८वीं शती में अरबी विद्वानों ने भारत से ज्योतिष विद्या सीखी और भारतीय ज्योतिष 'सिद्धान्तों' का सिन्दहिन्द नाम से अरबी में अनुवाद किया। अरबी भाषा में लिखी गयी 'आदन उल अम्बाफितल कालूली अतिब्बा' नामक पुस्तक में लिखा है कि- 'भारतीय विद्वानों ने अरबी के अंतर्गत बगदाद की राजसभा में जाकर ज्योतिष-चिकित्सा आदि शास्त्रों की शिक्षा दी थी।' कर्क नामक एक विद्वान शक संवत् ६९४ में बादशाह अलमसूर के दरबार में ज्योतिष और चिकित्सा के ज्ञानदान के निमित्त गए थे।

भारतीय वांग्मय के प्राचीनतम ग्रन्थों में आयी ज्योतिर्विज्ञान की शब्दावली भी यही प्रमाणित करती है कि इसकी जन्मस्थली भारत ही है। ऋग्वेद संहिता में चक्र शब्द आया है, जो राशिचक्र का द्योतक है। ''द्वादशारं नहि तज्जराय (ऋक् १-१६४-११)'' मंत्र में द्वादशारं शब्द १२ राशियों का बोधक है। प्रकरणगत विशेषताओं के ऊपर ध्यान देने से इस मंत्र में स्पष्टतया द्वादश राशियों का निरूपण देखा जा सकता है। इसके अलावा ऋग्वेद के अन्य स्थलों एवं शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि आज से-कम-से-कम २८००० वर्ष पहले भारतीयों ने खगोल और ज्योतिषशास्त्र का मन्थन किया था। वे आकाश में चमकते हुए नक्षत्र पुँज, आकाश-गंगा निहारिका आदि के नाम-रूप-रंग-आकृति आदि से पूर्णतया परिचित थे।

'अलबेरुनीज इण्डिया' के पृष्ठों में अलबेरुनी की स्पष्टोक्ति है कि ज्योतिष शास्त्र में हिन्दू लोग संसार की सभी जातियों से बढ़कर है। मैंने अनेक भाषाओं के अंकों के नाम सीखे हैं, पर किसी जाति में हजार के आगे की संख्या के लिए मुझे कोई नाम नहीं मिला। हिन्दुओं में अठारह अंकों तक की संख्या के लिए नाम है, जिनमें अन्तिम संख्या का नाम परार्द्ध बताया गया है। इण्डिया-ह्वाट इट केन टीच अस' में प्रो. मैक्समूलर ने लिखा है, भारतवासी आकाशमण्डल और नक्षत्र मण्डल आदि के बारे में अन्य देशों के ऋणी नहीं हैं अपितु वे ही इनके मूल आविष्कर्ता हैं। फ्राँसीसी पर्यटक फ्राक्वीस वर्नियर भी भारतीय ज्योतिषज्ञान की प्रशंसा करते हुए लिखते है कि भारतीय अपनी गणना

द्वारा चन्द्र और सूर्यग्रहण की बिलकुल ठीक भविष्यवाणी करते हैं। इनका ज्योतिषज्ञान प्राचीनतम और मौलिक है।

'टरवीनियरस ट्रेविल इन इण्डिया' में फ्राँसीसी यात्री टरवीनियर ने भी भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता और विशालता से प्रभावित होकर कहा है कि "भारतीय, ज्योतिष ज्ञान में प्राचीनकाल से ही निपुण हैं। वे व्यक्तिगत, राष्ट्रीय एवं वैश्विक जीवन के प्रत्येक पक्ष के संबन्ध में सटीक भविष्यवाणी करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं।''

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रैनिका में लिखा है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे वर्तमान अंक क्रम की उत्पत्ति भारत से है। सम्भवतः ज्योतिष सम्बन्धी उन सारणियों के साथ, जिनको एक भारतीय राजदूत सन् ७७३ ईसवी में बगदाद में लाया-इन अंकों का प्रवेश भारत से हुआ। फिर ईसवी सन् की ९वीं शती के प्रारम्भिक काल में प्रसिद्ध अबूजफर मोहम्मद अल खारिज्मी ने अरबी में उक्त क्रम का विवेचन किया और उसी समय से अरबों में उसका प्रचार बढ़ने लगा। यूरोप में शून्य सहित यह सम्पूर्ण अंक क्रम ईसवी सन् की १२वीं शती में अरबी से लिया गया है इस क्रम से बना हुआ अंकगणित 'अल गोरिट्मस' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

'थियोगोनी ऑफ द हिन्दूज' में काण्ट आर्मर्स्टजन ने लिखा है कि वेलों द्वारा किए गये गणित से ही प्रतीत होता है कि ईसवी सन् ३००० वर्ष पूर्व ही भारतीयों ने ज्योतिष शास्त्र और भूमिति शास्त्र में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। कर्नल टाड ने अपने 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ में लिखा है हम उन ज्योतिषियों को यहाँ (भारत में) पा सकते हैं, जिनका ग्रह-मण्डल सम्बन्धी ज्ञान अब भी यूरोप में आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है। मिस्टर मारिया ग्राहम लेटर्स ऑन इण्डिया में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते है कि समस्त मानवीय परिष्कृत विज्ञानों में ज्योतिष मनुष्य ऊँचा उठा देता है। इसके प्रारम्भिक विकास का इतिहास मानवता के उत्थान का इतिहास है। भारत में इसके आदिम अस्तित्व के बहुत से प्रमाण मौजूद है।

मिस्टर सी.वी. क्लार्क एफ.जी. एफ. कहते हैं कि अभी बहुत वर्ष पीछे तक हम सुंदर स्थानों के अक्षांश के विषय में निश्चयात्मक रूप से ज्ञान नहीं रखते थे किन्तु प्राचीन भारतीयों ने ग्रहण ज्ञान के समय से ही इन्हें जान लिया था। इनकी यह अक्षांश-रेखाएँ वाली प्रणाली वैज्ञानिक ही नहीं अचूक है। 'एन्सिएण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया में प्रो. विलसन का मानना है कि भारतीय ज्योतिषियों को प्राचीन खलीफों विशेषकर हारुँ रशीद और अलमायन ने भली भाँति प्रोत्साहित किया। वे बगदाद आमंत्रित किए गए और वहाँ उनके ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। डॉक्टर राबर्टसन का कथन है कि 12 राशियों का ज्ञान सबसे पहले भारतवासियों को ही हुआ था। भारत ने प्राचीनकाल में ज्योतिर्विद्या में अच्छी

उन्नति की थी।

प्रो. कोलबुक और बेबर साहब ने लिखा है कि भारत को ही सबसे प्रथम चन्द्र नक्षत्रों का ज्ञान था। चीन और अरब के ज्योतिष का विकास भारत से ही हुआ है। उनका क्रान्तिमण्डल हिन्दुओं का ही है। निस्सन्देह उन्हीं से अरब वालों ने इसे लिया है। विख्यात चीनी विद्वान 'लियांग चिचाप' के शब्दों में "वर्तमान सभ्यजातियों ने जब हाथ-पैर हिलाना भी प्रारम्भ नहीं किया था, तभी हम दोनों भाइयों (भारत और चीन) ने मानव सम्बन्धी समस्याओं को ज्योतिष जैसे विज्ञान द्वारा सुलझाना आरम्भ कर दिया था।"

प्रो. वेलस महोदय ने प्लेफसर साहब की कुछ पंक्तियाँ मिल्स इण्डिया के खण्ड दो में उद्धृत की हैं, जिनका आशय है कि – 'ज्योतिष ज्ञान के बिना बीजगणित की रचना कठिन है।' विलसन कहते है कि भारत ने ज्योतिष और गणित के तत्वों का आविष्कार अति प्राचीनकाल में किया था। डी. मार्गन ने स्वीकार किया है कि भारतीयों का गणित और ज्योतिष यूनान के किसी भी गणित या ज्योतिष के सिद्धान्त की अपेक्षा महान है। इनके तत्व प्राचीन और मौलिक हैं।

डॉ. थोबो बहुत सोच-विचार और समालोचना के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत ही रेखागणित के मूल सिद्धान्तों क आविष्कर्ता है। इसने नक्षत्र विद्या में भी पुरातनकाल में ही प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। यह रेखागणित के सिद्धान्त का उपयोग इस विद्या को जानने के लिए करता था। वर्जेस महोदय ने सूर्य सिद्धान्त के अंग्रेजी अनुवाद के परिशिष्ट में अपना मत उद्धृत करते हुए बताया है कि भारत का ज्योतिष टालमी के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है, बल्कि इसने ईसवी सन के बहुत पहले ही इस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

2.4 ज्योतिष का विकास – काल क्रम के आधार पर

ज्योतिषशास्त्र अपने आरम्भ के साथ ही विकसित और प्रभावशाली रहा है। कालान्तर में केवल कालभेद से उसके रूप में परिवर्तन हुआ है। जैसा कि भगवान सूर्य ने सूर्यसिद्धान्त में कहा है –

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलः।।

अत: आइए कालभेद के आधार पर हम ज्योतिष के विकास की बात करते है –

ज्योतिषशास्त्र के जन्म का पता लगाना शक्तिगम्य नहीं है। यह मानव सृष्टि के समान अनादि है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि एक कल्पकाल में ४३२०००००० वर्ष होते हैं, सृष्टि प्रारम्भ होते ही सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में नियमित रूप से भ्रमण करने लगते हैं। मानव सुदूर प्राचीन काल में सृष्टि के अनन्तर बहुत समय तक लिपि रूप भाषा शक्ति से रहित था। वह अपना काम चलाने के

लिए केवल संकेतात्मक भाषा का ही प्रयोग करता था। विकासवाद बतलाता है कि आरम्भ में मनुष्य केवल नाद कर सकता था, इसी अस्पष्ट नाद द्वारा अपने सुख-दु:ख, हर्ष-पीड़ा आदि भाव प्रदर्शित करता था। जब अनुभव और अनुमान ने परस्पर एक–दूसरे की की सहायता कर मानव जाति की विकसित परम्परा कायम कर दी तो सम्भाषण-शक्ति का आविर्भाव हुआ। नाद को निरन्तर उच्चारित कर विभिन्न भावों, विचारों और उनके भेदों को क्रमश: प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी। ज्ञानाभ्युदय के साथ-साथ नाद शक्ति भी वृद्धिगत होने लगी और धीरे-धीरे भावों के साथ इंगित, चेष्टा और व्यक्त नाद का आरम्भ हुआ। इसी बीच में अनुकरण की मात्रा ने प्रकृतिप्रदत्त भाव और विचारों के विनिमय में पर्याप्त योग दिया, जिससे मानव ने आज के समान सम्भाषण की योग्यता प्राप्त की।

यहाँ ध्यातव्य है कि सम्भाषण की भाषा के आविर्भूत होने पर लिपि की भाषा अभी प्राचीन मानव को अज्ञात थी। इस समय उसके समस्त कार्य मौखिक ही चलते थे। वेद शब्द का अर्थ जो श्रुत किया गया है वह भी इस बात का द्योतक है कि प्राचीन मानव का समस्त ज्ञान भण्डार मुखाग्र था, उसमें उसके लिपिबद्ध करने की क्षमता नहीं थी।

प्राग्वैदिक काल में भारतीय ऋषियों ने दिव्य ज्ञानशक्ति द्वारा आकाश मण्डल के समस्त तत्वों को ज्ञात कर लिया था और जैसे-जैसे आगे जाकर अभिव्यंजना की प्रणाली विकसित होती गयी, ज्योतिष तत्व साहित्य द्वारा प्रकट होने लगे। अतएव वैदिककाल में ज्योतिष के महत्वपूर्ण सिद्धान्त अत्यधिक पुष्पवित और पल्लवित थे। दैनिक कार्यों के सम्पादनार्थ उपयोगी पाक्षिक तिथिपत्र भी उस समय काम में लाये जाते थे। उस युग के प्रत्येक व्यक्ति को ग्रह-नक्षत्रों का इतना ज्ञान था, जिससे वह केवल आकाश को देखकर ही समय और दिशा को ज्ञात कर लेता था। उदयकाल में जिन ज्योतिष सिद्धान्तों को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है, वे प्रागवैदिक काल में मौखिक रूप में वर्तमान थे।

प्राग्वैदिक काल में ज्योतिष के गणित, सिद्धान्त और फलित ये तीनों भेद स्वतन्त्र रूप से प्रस्फुटित हो गये थे। ग्रहों की गति, स्थिति, अयनांश, पात आदि गणित ज्योतिष के अन्तर्गत तथा शुभाशुभ समय का निर्णय, विधायक, यज्ञ यागादि कार्यों के करने के लिए समय और स्थान का निर्धारण फलित ज्योतिष का विषय माना जाता था। पूर्वमध्यकाल की अन्तिम शताब्दियों में सिद्धान्त ज्योतिष के स्वरूप में भी विकास हुआ, लेकिन खगोलीय निरीक्षण और ग्रहवेध की परिपाटी के कम हो जाने से गणित के कल्पनाजाल द्वारा ही ग्रहों के स्थानों का निश्चय करना सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत आ गया। तथा पूर्वमध्यकाल के प्रारम्भ में ज्योतिष का अर्थ स्कन्धत्रय – होरा, सिद्धान्त और संहिता के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इस युग के मध्य में इस परिभाषा ने और भी संशोधन

देखे और आगे जाकर यह पंचरूपात्मक – होरा, गणित या सिद्धान्त, संहिता, प्रश्न और शकुन रूप हो गयी।

अभ्यास प्रश्न – 1

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्रोत्पत्ति का मूल है –
   क. वेद ख. पुराण ग. उपनिषद घ. स्मृति
2. निम्नलिखित में 'अंक विद्या' किसकी देन है –
   क. चीन ख. भारत ग. जापान घ. मिस्र
3. शतपथ ब्राह्मणोक्त 'द्वादशारं हि तज्जिराय' में द्वादशारं का अर्थ क्या है –
   क. 12 चक्र ख. 12 राशियाँ ग. 12 नक्षत्र घ. 12 शार
4. एक कल्प में कितने वर्ष होते है?
   क. 432000000 वर्ष ख. 430000 वर्ष ग. 430000000 वर्ष घ. 432 वर्ष
5. त्रिस्कन्ध ज्योतिष का उद्भव कब हो चुका था –
   क. प्रागवैदिक काल में ख. सिद्धान्त काल में ग. संहिता काल में घ. कोई नहीं
6. ग्रहों की गति व स्थिति का निर्धारण किस स्कन्ध में किया जाता है -
   क. संहिता ख. सिद्धान्त ग. होरा घ. शकुन
7. 'भास्कर' का अर्थ है -
   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. दिवा घ. रात्रि

प्राग्वैदिक काल में जहाँ वेद, ब्राह्मण और आरण्यकों में यत्र-तत्र संकुचित रूप से ज्योतिष चर्चा पाई जाती है, आदिकाल में इस विषय के उपर स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना की जाने लगी थी। इस युग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद और ज्योतिष – ये छः भेद 'वेदांग' के रूप में प्रकट हो चुके थे। वेदांग काल में महात्मा लगध ने 'वेदांग ज्योतिष' की रचना कर ज्योतिष को स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया। वेदांग ज्योतिष में ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ज्योतिष – ये तीन ग्रन्थ माने जाते हैं। प्रथम के संग्रहकर्ता लगध नाम के ऋषि हैं, इसमें ३६ कारिकाएँ हैं। यजुर्वेद ज्योतिष में ४९ कारिकाएँ हैं, जिनमें ३६ कारिकाएँ तो ऋग्वेद ज्योतिष की हैं और १३ नयी आयी हैं। अथर्व ज्योतिष में १६२ श्लोक हैं। इन तीनों ग्रन्थों में फलित की दृष्टि से अथर्व ज्योतिष महत्वपूर्ण है।

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास,

पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया हैं। वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें 'वेदांग ज्योतिष' में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है।

वेदांग ज्योतिष के समकालीन रचे गए जैन ज्योतिष के ग्रन्थ सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्र –प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और ज्योतिषकरण्डक इस विषय के स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, इसके अतिरिक्त कल्पसूत्र, निरूक्त, व्याकरण, स्मृतियाँ, महाभारत और जीवाभिगम सूत्रादि ईसवी सन् से सैकड़ो वर्षों पूर्व रचित ग्रन्थों में फुटकर रूप से ज्योतिष की अनेक चर्चाएँ आयी हैं। इसी कालखण्ड में प्रथम आर्यभट्ट, भट्टत्रिविक्रम, लल्ल, कालाकाचार्य, ब्रह्मगुप्त, मुंजाल, महावीराचार्य, भट्टोत्पल, चन्द्रसेन, श्रीपति, श्रीधर, भट्टवोसरि जैसे आचार्यों का उद्भव हुआ था। जिन्होंने अपनी कृतियों से ज्योतिष शास्त्र को सुदृढ़ किया था। आर्यभट्ट द्वारा रचित 'आर्यभट्टीयम्' तथा लल्ल के द्वारा रचित 'शिष्यधीवृद्धि' तन्त्रम् ज्योतिष के सुप्रसिद्ध रचनाओं में से एक है। ब्रह्मगुप्त की ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, मुंजाल का लघुमानास, महावीराचार्य की ज्योतिषपटल और गणितसारसंग्रह, भट्टोत्पल की टीकायें, श्रीपति की सिद्धान्तशेखर तथा चन्द्रसेन की केवलज्ञानहोरा नामक रचनायें ज्योतिष शास्त्र की अद्वितीय कृति मानी जाती है। इसके साथ-साथ उस समय अंग विद्या का भी उद्भव हो चुका था।

वैदिक काल से ही भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की परम्परा भी आरम्भ हो गयी थी। उस कालखण्ड में पंचांग का स्वरूप आज के सदृश नहीं था, किन्तु पंचांग की उत्पत्ति हो चुकी थी। तभी तो वेदों में कई स्थलों पर हमें तिथि और नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्म, सौर तथा आर्य – इन तीन पक्षों के आधार पर पंचांग निर्माण का कार्य किया जाता था। कालान्तर में पंचांग के स्वरूप में कई परिवर्तन हुए और सम्प्रति ५०० से अधिक प्रकार के पंचांग भारतवर्ष में निर्मित होते हैं।

पूर्वमध्यकाल में ज्योतिषशास्त्र उन्नति की चरम सीमा पर था। वराहमिहिर जैसे अनेक धुरन्धर ज्योतिर्विद हुए, जिन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा अनेक नवीन विषयों का समावेश किया। इस युग के प्रारम्भिक आचार्य वराहमिहिर या वराह हैं, जिन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तों का पंचसिद्धान्तिका में संग्रह किया। ग्रहगणित के क्षेत्र में सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण इन भेदों का प्रचार भी होने लगा था। सिद्धान्तगणित में कल्पादि से, तन्त्र

में युगादि से और करण शकाब्द पर से अहर्गण बनाकर ग्रहादि का आनयन किया जाता है। सिद्धान्त में जीवा और चाप के गणित द्वारा ग्रहों का फल लाकर आनीत मध्यमग्रह में संस्कार कर देते हैं तथा भौमादि ग्रहों का मन्द और शीघ्रफल लाकर मन्दस्पष्ट और स्पष्ट मान सिद्ध करते है।

उत्तरमध्यकाल में ज्योतिषशास्त्र के साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ है। मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आलोचनात्मक ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि के सिद्धान्तों की आलोचना की और आकाश निरीक्षण द्वारा ग्रहमान की स्थूलता ज्ञात कर उसे दूर करने के लिए बीजसंस्कार की व्यवस्था बतलायी। ईसवी सन् की १२ वीं सदी में गोल विषय के गणित का प्रचार बहुत हुआ था। उत्तरमध्यकाल की प्रमुख विशेषता ग्रहगणित के सभी अंगों के संशोधन की है। लम्बन, नति, आयनबलन, आक्षबलन, आयनदृक्कर्म, आक्षदृक्कर्म, भूभाबिम्ब साधन, ग्रहों के स्पष्टीकरण के विभिन्न गणित और तिथ्यादि के साधन में विभिन्न प्रकार के संस्कार किये गये, जिससे गणित द्वारा साधित ग्रहों का मिलान आकाश-निरीक्षण द्वारा प्राप्त ग्रहों से हो सके।

इस युग की एक अन्य विशेषता यन्त्र निर्माण की भी है। भास्कराचार्य और महेन्द्रसूरि ने अनेक यन्त्रों के निर्माण की विधि और यन्त्रों द्वारा ग्रहवेध की प्रणाली का निरूपण सुन्दर ढंग से किया है। यद्यपि इस काल के प्रारम्भ में ग्रहगणित का बहुत विकास हुआ, अनेक करण ग्रन्थ तथा सारणियाँ लिखी गयीं, पर ई0 सन् की १५ वीं शती से ही ग्रहवेध की परिपाटी का ह्रास होने लग गया था। यों तो प्राचीन ग्रन्थों को स्पष्ट करने और उनके रहस्यों को समझाने के लिए इस युग में अनेक टीकाएँ और भाष्य लिखे गए, पर आकाश–निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से मौलिक साहित्य का निर्माण न हो सका। ग्रहलाघव, करणकुतूहल और मकरन्द जैसे सुन्दर करण ग्रन्थों का निर्मित होना भी इस युग के लिए कम गौरव की बात नहीं थी।

फलित ज्योतिष में जातक, मुहूर्त, सामुद्रिक, रमल और प्रश्न इन अंगों के साहित्य का निर्माण भी उत्तरमध्यकाल में कम नहीं हुआ है। मुस्लिम संस्कृति के अति निकट सम्पर्क के कारण रमल और ताजिक इन अंगों का तो नया जन्म माना जाता है। ताजिक शब्द का अर्थ ही अरब देश से प्राप्त शास्त्र है। इस युग में इस विषय पर लगभग दो दर्जन ग्रन्थ लिखे गये । इस शास्त्र में किसी व्यक्ति के नवीन वर्ष और मास में प्रवेश करने की ग्रहस्थिति पर से उसके समस्त वर्ष और मास का फल बताया जाता है। बलभद्रकृत ताजिक ग्रन्थ में कहा गया है :-

यवनाचार्येण पारसीकभाषायां प्रणीतं ज्योति:शास्त्रैकदेशरूपं वार्षिकादिनानाविधफलादेशफलकशास्त्रं ताजिकफलवाच्यं तदनन्तरभूतै: समरसिंहादिभि:

ब्राह्मणै: तदेवशास्त्रं संस्कृतशब्दोपनिबद्धं ताजिकशब्दवाच्यम्। अतएव तैस्ता एव इक्कबालादयो यावत्य: संज्ञा उपनिबद्धा:।।

अर्थात् यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अंगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करनेवाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। इसके पश्चात् समरसिंह आदि विद्वानों ने संस्कृत भाषा में इस शास्त्र की रचना की और इक्कवाल, इन्दुवार, इशराफ आदि यवनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित योगों की संज्ञाएँ यथावत् रखीं।

इसी कालखण्ड में रमल शास्त्र, मुहूर्त्त शास्त्र एवं शकुनशास्त्र का भी उत्तरोत्तर विकास हुआ। आइए अब उनके बारे में भी चर्चा करते है।

रमल – रमल का प्रचार विदेशियों के संसर्ग से भारत में हुआ है। ईसवी सन् ११ वीं एवं १२ वीं शती की कुछ फारसी भाषा में रची गयी रमल की मौलिक पुस्तकें खुदाबख्शखाँ लाइब्रेरी पटना में मौजूद हैं। इन पुस्तकों में कर्ताओं के नाम नहीं हैं। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती है। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए कहा गया है कि – **'वेदतत्वोपरिकृतं रम्लशास्त्रं च सूरिभि:। तेषां भेदा: षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते।'**

अर्थात् अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्वों पर विद्वानों ने रमलशास्त्र बनाया है एवं इन चार तत्वों के सोलह भेद कहे हैं, अत: रमल के पाशे में १६ शकलें बतायी गयी है।

किंवदन्ती है कि बहलोद लोदी के साथ भी एक अच्छा रमलशास्त्र का वेत्ता रहता था, यह मूक प्रश्नों का उत्तर देने में सिद्धहस्त बताया गया है। रमलनवरत्न के मंगलाचरण में पूर्व के रमलशास्त्रियों को नमस्कार किया गया है: -

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधै:। उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम्।।

अर्थात् प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार करके परमसुख नामक ग्रन्थकर्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र में से सुन्दर नवरत्न को निकाला है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७ वीं शती है। अत: यह स्वयं सिद्ध है कि उत्तरमध्यकाल में रमलशास्त्र के अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

मुहूर्त्त – यदि देखा जाय तो उदयकाल में ही मुहूर्त्त सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में संहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थीं, पर उत्तरमध्यकाल में इस अंग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनों की संख्या में हुई हैं। शक संवत् १४२० में नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्त्ततत्व, शक् संवत् १४१३ में नारायण कृत मुहूर्त मार्तण्ड, शक् संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्त्त चिन्तामणि, शक् संवत् १५४९ में विट्ठल दीक्षित कृत् मुहूर्तकल्पद्रुम आदि मुहूर्त्त सम्बन्धी रचनाएँ हुई हैं। इस युग में मानव के भी आवश्यक कार्यों के

लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

शकुनशास्त्र – इसका विकास भी स्वतन्त्र रूप से इस युग में अधिक हुआ है। वि0सं0 १२३२ में अह्निपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपतिचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से स्वरविज्ञान द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने वाले शुभाशुभ शकुनों का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेना के पुत्र बल्लालसेन ने श.सं. १०९२ में अद्भुतसागर नाम का एक संग्रह ग्रन्थ रचा है, जिसमें अपने समय के पूर्ववर्ती ज्यातिर्विदों की संहिता सम्बन्धी रचनाओं का संग्रह किया है। कई जैन मुनियों ने शकुन के उपर वृहद् परिमाण में रचनायें लिखी हैं। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्हीं तत्वों की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी है।

उत्तरमध्यकाल में भारतीय ज्योतिष ने अनेक उत्थानों और पतनों को देखा है। विदेशियों के सम्पर्क से होनेवाले संशोधनों को अपने में पचाया है और प्राचीन भारतीय ज्योतिष की गणित-विषयक स्थूलताओं को दूर कर सूक्ष्मता का प्रचार किया है।

यदि संक्षेप में उत्तरमध्यकाल के ज्योतिष साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यही कहा जा सकता है कि इस काल में गणित ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष का साहित्य अधिक फला-फूला है। गणित ज्योतिष में भास्कर के समान अन्य दूसरा विद्वान नहीं हुआ, जिससे विपुल परिमाण में इस विषय की सुन्दर रचनाएँ नहीं हो सकी। इस काल में भास्कराचार्य, दुर्गदेव, उदयप्रभदेव, मल्लिषेण, राजादित्य, बल्लालसेन, पद्मप्रभ सूरि, नरचन्द्र उपाध्याय, अट्ठकवि या अर्हद्दास, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, गणेश, ढुण्ढिराज,नीलकण्ठ, रामदैवज्ञ, मल्लारि, नारायण तथा रंगनाथ आदि जैसे अनेकों विद्वान हुए जिन्होंने अपनी अपूर्व कृतियों से भारतीय ज्योतिष शास्त्र को और पुष्पवित तथा पल्लवित करने में अपना योगदान दिया।

आधुनिक काल –

आधुनिक काल के आरम्भ में मुस्लिम संस्कृति के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार भी भारत में हुआ। यद्यपि उत्तरमध्यकाल में ही ज्योतिषियों ने आकाशावलोकन त्यागकर पुस्तकों का पल्ला पकड़ लिया था और पुस्तकीय ज्ञान ही ज्योतिष माना जाने लगा था। सत्य तो यह है कि भास्कराचार्य के पश्चात् मुस्लिम राज्यों के कारण हिन्दू-धर्म, सम्पत्ति, साहित्य और ज्योतिष आदि विषयों की उन्नति पर पहाड़ गिरे जिससे उक्त विषयों का विकास रूक गया। कुछ धर्मान्ध

साम्प्रदायिक पक्षपाती मुस्लिम बादशाहों ने सम्प्रदाय के मद में चूर होकर भारतीय ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं किया, तथापि उसकी धारा शाश्वत रूप में गतिमान है। विद्वानों को राजाश्रय न मिलने से ज्योतिष के प्रसार और विकास में कुछ कम बाधाएँ नहीं आयी। नवीन संशोधन और परिवर्द्धन तो अलग की बात है, पुरातन ज्योतिष ज्ञान-भण्डार का संरक्षण भी कठिन हो गया। यद्यपि कुछ हिन्दू, मुस्लिम विद्वानों ने इस युग में फलित ग्रन्थों की रचनाएँ कीं, लेकिन आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से वास्तविक ज्योतिष तत्वों का विकास नहीं हो सका।

शकुन, प्रश्न, मुहूर्त्त, जन्मपत्र एवं वर्षपत्र के साहित्य की अवश्य वृद्धि हुई है। कमलाकर भट्ट ने सूर्यसिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सिद्धान्ततत्वविवेक' नामक गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस अर्वाचीन काल के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों पर टीका- टिप्पणी बहुत लिखे गये।

१७८० में आमेराधिपति महाराज जयसिंह का ध्यान ज्योतिष की ओर विशेष आकृष्ट हुआ और उन्होंने काशी, जयपुर एवं दिल्ली में वेधशालाएँ बनवायीं, जिनमें पत्थरों की ऊँची और विशाल दीवारों के रूप में बड़े-बड़े यन्त्र बनवाये। स्वयं महाराज जयसिंह इस विद्या के प्रेमी थे, इन्होंने यूरोप की प्रचलित तारासूचियों में कई त्रुटियाँ बताई तथा भारतीय ज्योतिष के आधार पर नवीन सारणियाँ तैयार करायीं।

सामन्तचन्द्रशेखर ने अपने अद्वितीय बुद्धिकौशल द्वारा ग्रहवेध कर प्राचीन गणित-ज्योतिष के ग्रन्थों में संशोधन किया तथा अपने सिद्धान्तों द्वारा ग्रहों की गतियों के विभिन्न प्रकार बतलाये। इनके द्वारा रचित 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इधर अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार हो गया। इस भाषा के प्रचार के साथ-साथ अंग्रेजी आधुनिक भूगोल और गणितविषयक विभिन्न ग्रन्थों का पठन –पाठन की प्रथा भी प्रचलित हुई। सन् १८५७ के पश्चात् तो आधुनिक नवीन आविष्कृत विज्ञानों का प्रभाव भारत के उपर विशेष रूप से पड़ा है। फलत: अंग्रेजी भाषा के जानकार संस्कृत के विद्वानों ने इस भाषा के नवीन गणित ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में कर ज्योतिष की श्रीवृद्धि की है। बापूदेव शास्त्री और पं0 सुधाकर द्विवेदी ने इस और विशेष प्रयत्न किया है। आप महानुभावों के प्रयास के फलस्वरूप ही रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति के ग्रन्थों से आज का ज्योतिष धनी कहा जा सकेगा। केतक नामक विद्वान ने केतकीग्रहगणित की रचना अंग्रेजी ग्रह-गणित और भारतीय गणित सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर की है। दीर्घवृत्त, परिवलय, अतिपरवलय, इत्यादि के गणित का विकास इस नवीन सभ्यता के सम्पर्क की मुख्य देन माना जाता है।

पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, सौर-चक्र, बुध, शुक्र, मंगल, अवान्तर ग्रह, वृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून, नभस्तूप, आकाशगंगा और उल्का आदि का वैज्ञानिक विवेचन पश्चिमीय ज्योतिष के सम्पर्क से इधर चार दशकों के बीच में विशेष रूप से हुआ है। डॉ0 गोरखप्रसाद ने आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर इस विषय की एक विशालकाय सौरपरिवार नाम की पुस्तक लिखी है जिससे सौर जगत् के सम्बन्ध में अनेक नवीन बातों का पता लगता है। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने ज्योतिर्विनोद नामक पुस्तक में कापर्निकस, जिओईनो, गैलेलियो और केप्लर आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों के अनुसार ग्रह, उपग्रह और अवान्तर ग्रहों का स्वरूप बतलाया है। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य सिद्धान्त का आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर विज्ञानभाष्य लिखा है, जिससे संस्कृतज्ञ ज्योतिष के विद्वानों का बहुत उपकार हुआ ह। अभिप्राय यह है कि आधुनिक युग में पाश्चात्य ज्योतिष के सम्पर्क से गणित ज्योतिष के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ हुआ है। यदि भारतीय ज्योतिषी आकाश-निरीक्षण को अपनाकर नवीन ज्योतिष के साथ तुलना करें तो पूर्वमध्यकाल से चली आयी ग्रहगणित की सारणियों की स्थूलता दूर हो जायेगी और भारतीय ज्योतिष की महत्ता समाज के समक्ष और सुदृढ़ रूप में स्थापित हो सकेगा।

अर्वाचीन काल में मुनीश्वर, दिवाकर, कमलाकर भट्ट, नित्यानन्द, महिमोदय, मेघविजयगणि, उभयकुशल, लब्धिचन्द्रमणि, बाघजी मुनि, यशस्वतसागर, जगन्नाथ सम्राट, बापूदेव शास्त्री, नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, सुधाकर द्विवेदी, पं0 रामयत्न ओझा, पं0 रामव्यास पाण्डेय, पं0 अवधबिहारी त्रिपाठी, पं0 मीठालाल ओझा, पं0 सीताराम झा, आचार्य राजमोहन उपाध्याय, आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, पं0 हीरालाल मिश्र, आचार्य कल्याण दत्त शर्मा, आचार्य शुकदेव चतुर्वेदी, आचार्य रामचन्द्र झा, शिवकान्त झा, आचार्य सच्चिदानन्द मिश्र आदि अनेकों ऐसे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान हुए हैं और हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इस शास्त्र की उपासना में लगा दी। इन्होंने अपनी-अपनी कृतियों से इस शास्त्र की रक्षा के साथ-साथ इनको पुष्पवित और पल्लवित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और दे रहे हैं। साथ ही इनके अध्येताओं को नवीन उर्जा प्रदान करने के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र में नित्य नवीन शोध करने के लिए प्रेरित भी किया।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अर्वाचीन ज्योतिष में जो शिथिलता आयी है, उसका कारण दिव्य ज्ञान वाले ऋषियों की कमी है। आज हमारे देश में न तो बड़ी-बड़ी वेधशालाएँ हैं और न योगक्रिया के जानकार ऋषि- महर्षि ही। इसलिए नवीन विवृत्तियाँ ज्योतिष में नहीं हो पा रही है। इसके साथ-साथ सर्वकार को भी इस विषय के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं रह गया है। राज संरक्षण

के बिना तो किसी भी विद्या अथवा ज्ञान का काल सापेक्ष पल्लवन हो ही नहीं सकता। अत: इन सभी के अभाव में भी इनके अध्येताओं की विशेष जिम्मेदारी बनती है कि ज्योतिष शास्त्र की दिशा में वह नवीन कार्य कर इसका संरक्षण करने में अपना योगदान दें। शास्त्र तो अमर है, किन्तु युगसापेक्ष उसकी सत्ता लोक में व्याप्त होने पर ही होगी। अत: लोक में इसे अधिक से अधिक यथार्थ रूप में जोड़े जाने का काम किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. वेदांग ज्योतिष की रचना ..... ने की थी।
2. यजुर्वेद ज्योतिष में ..... कारिकाएँ हैं।
3. अथर्व ज्योतिष में कुल श्लोकों की संख्या ..... है।
4. पंचसिद्धान्तिका के रचयिता ..... है।
5. मुहूर्त्तमार्तण्ड ..... की रचना है।
6. दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना ..... है।
7. आचार्य नरपति द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम ..... है।
8. पण्डित रामयत्न ओझा ..... काल के विद्वान है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति का मूल 'वेद' है। ज्योतिशास्त्र वैदिककालीन ऋषि-महर्षियों की अलौकिक प्रतिभा की देन है। भारतीय विद्याओं में इसका स्थान अद्वितीय है। मनुष्य की संरचना और उसकी प्रकृति का इससे अभिन्न सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मन्दाकिनियाँ, निहारिकाएं एवं चराचर प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। इन ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं, तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनःसंस्थानों पर कार्य करते हैं और उसकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन और उपयोग से ज्योतिषी को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ज्योतिष शास्त्र – वेदश्चक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषशास्त्रम्। वेद के चक्षु रूपी अंग होने के कारण इसे वेदांग भी कहा जाता है।

वैदिककालीन – वेदों के समय का

ग्रह- गच्छतीति ग्रह। अर्थात् वह आकाशीय पिण्ड में जिसमें गति हो, और जो चलायमान हो उसे ग्रह कहते है।

खगोल – आकाशीय पिण्डों का अध्ययन जिसके अन्तर्गत किया जाता है, उसे खगोल कहते है।

सिद्धान्त - त्रुट्यादि से प्रलयकाल पर्यन्त की गई काल गणना जिस स्कन्ध में हो, उसे सिद्धान्त कहते हैं।

संहिता – ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहचारवश ग्रह- नक्षत्रादि बिम्बों के शुभाशुभ लक्षण से पशु – पक्षी- कीटादियों का भूसापेक्ष सामूहिक विवेचन, प्राकृतिक – आकाशीय घटनाओं का ज्ञान किया जाता हो, उसे 'संहिता शास्त्र' कहते हैं।

होरा – जिस स्कन्ध में मानव मात्र का उसके जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् उसके जीवन सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का विवेचन किया जाता है, उसे होरा कहते हैं।

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। आकाशस्थ वह पिण्ड जो चलता नहीं नक्षत्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में तारों के समूह को भी नक्षत्र कहा जाता है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में षड् वेदांग कहे गये है। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. ख 4. ग 5. क 6. ख 7. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. महात्मा लगध 2. ३६ 3. १६२ 4. वराहमिहिर
5. नारायण 6. सिद्धान्तदर्पण 7. नरपतिजयचर्या
8. आधुनिक

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – आचार्य श्रीशंकरबालकृष्णदीक्षित

(ख) भारतीय ज्योतिष – आचार्य नेमिचन्द शास्त्री।

(ग) सिद्धान्त ज्योतिष मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

(घ) ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति का विस्तृत विश्लेषण कीजिये।
2. ज्योतिष शास्त्र के विकास क्रम का वर्णन कीजिये।
3. ज्योतिष के उत्पत्ति के बारे में विभिन्न विद्वानों का मत उपस्थापित कीजिये।
4. ज्योतिष के विकास पर निबन्ध लिखिये।

इकाई – 3 ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता एवं वेदाङ्ग ज्योतिष

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता

3.4 वेदाङ्ग ज्योतिष

3.4.1 लगध प्रोक्त वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय

3.4.2 वेदाङ्ग ज्योतिष में दिनमान

3.4.3 वैदिक ज्योतिष और वेदाङ्ग ज्योतिष में अन्तर

3.4.4 वैदिक ज्योतिष और वेदाङ्ग ज्योतिष का काल

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्द

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-501 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के उत्पत्ति एवं विकास से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता और वेदाङ्ग ज्योतिष के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिषशास्त्र मूलत: वेद का अंग है, अत: इसे 'वेदाङ्ग' भी कहा जाता है। इस शास्त्र की वेदाङ्गता स्वयंसिद्ध है। इस इकाई में आप तत्सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करके इसे जान लेंगे। 'वेदाङ्ग ज्योतिष' महात्मा लगध की रचना है, जो कि सर्वप्रथम ज्योतिष शास्त्र को पृथक रूप से स्थापित करने का कार्य करती है।

आइए इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता और वेदाङ्ग ज्योतिष का विस्तृत अध्ययन करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिष के मूलोत्पत्ति सम्बन्धित तत्वों को जान जायेगें।
- ज्योतिष वेदाङ्ग है, इसका ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के वेदांगता को सिद्ध कर सकेंगे।
- वेदाङ्ग ज्योतिष को समझा सकेगें।

3.3 ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता

ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता को समझने के पूर्व सर्वप्रथम अंग किसे कहते है? आइए इसे जानने का प्रयास करते है -

किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है, उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – 'अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंङ्गानि।'

यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अत: इसे वेदांग की संज्ञा दी गई है। शब्दशास्त्र, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा तथा छन्द इन छ: शास्त्रों द्वारा वेद का सम्यग् ज्ञान सम्भव होता है। अत: छ: शास्त्रों को 'वेदांग' कहा गया है। यद्यपि इन शास्त्रों को वेदांग सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वत: सिद्ध वेद के अंग हैं।

तथापि ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता के प्रमाणों का उद्धरण आपके अध्ययनार्थ इस इकाई में प्रस्तुत है-

प्राचीनकाल से आज तक वेदों की जितनी प्रकार की व्याख्याएँ हुई है उनसे स्पष्ट होता है वेद को मुख्य दो धाराओं में अब तक जाना गया है। प्रथम धारा वेद की यज्ञपरक व्याख्या करती है। यज्ञ ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य है जैसा कि आचार्य लगध ने वेदांग ज्योतिष में लिखा है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता:
काला हि पूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालनविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद से वेद यज्ञान् ।।

वेदों में यज्ञ के जो महत्व बतलाए गए हैं वे वेदविहित समय में ही करने पर फलीभूत होते हैं अन्यथा वे निष्फल या विपरीत फलदायक हो जाते हैं। श्रुति कहती है –

ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा।
यच्च किंचाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत।।

अर्थात् उपयुक्त नक्षत्र एवं उपयुक्त काल के अभाव में किया गया यज्ञ, कृत्या को समर्पित हो जाता है न कि देवताओं को। अत: यज्ञानुरूप काल का चयन यज्ञ से पूर्व आवश्यक होता है। प्राय: कार्यानुरूप काल का निर्देश भी स्थान- स्थान पर किया गया है। यथा –अग्न्याधान प्रसंग में कहा गया है –

वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत इत्यादि।

इसी प्रकार दीक्षा ग्रहण करने हेतु काल का निर्देश हैं –

एकाष्टम्यां दीक्षरेन्। फल्गुनी पूर्णमासे दीक्षरेन्।।

इससे स्पष्ट है कि यज्ञ से पूर्व के उपक्रम भी उचित काल में ही सम्पन्न होने चाहिए। आचार्य लगध ने पग-पग तिथि नक्षत्र, ऋतु एवं अयन आदि की आवश्यकता को देखते हुए काल का प्रतिपादन किया है। कालज्ञान को सर्वाधिक महत्व देते हुए आर्च ज्योतिष में काल की वन्दना की गई है।

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन:।।

ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मण आरण्यक तक ज्योतिष शास्त्र का विवेचन इस बात का परिचायक है कि यज्ञ के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र भी वेद का प्रतिपाद्य विषय है। अन्यथा संवत्सर से लेकर तिथि तक का उल्लेख वेदों में नहीं होता। इन्हीं आधारों पर ज्योतिष शास्त्र के प्रख्यात आचार्य भास्कर ने ज्योतिष शास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है –

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा: प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यत: स्याद् वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ।।

इतना ही नहीं भास्कर ने वेद पुरूष के सभी अंगों का उल्लेख करते हुए ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र बतलाया है। शब्दशास्त्र वेद का मुख है, ज्योतिष नेत्र, निरूक्त कर्ण, कल्प दोनों हस्त, शिक्षा नासिका, तथा छन्द वेद पुरूष के दोनों पैर हैं। इन अंगों में नेत्रों को विशेष महत्व दिया गया है इसी कारण ज्योतिष शास्त्र को शीर्षस्थ माना गया है। तद्वद् वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि स्थितम्। वेदों की यज्ञपरक व्याख्या के अनुसार ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता उक्त तथ्यों के आधार पर स्वयं सिद्ध है।

अब हम वेदों की व्याख्या की दूसरी धारा को लेते हैं जिसके अन्तर्गत हमारी जीवन पद्धति से जुड़ी हुई ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। इस धारा के अन्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया से लेकर मानव जीवन पद्धति तक का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। हम यहाँ केवल उन्हीं अंशों का उल्लेख करते हैं जिसका सीधा सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र से है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए सूर्यसिद्धान्त का कथन है –

वासुदेव: परं ब्रह्म तन्मूर्ति: पुरूष: पर:।
अव्यक्तो निर्गुण: शान्त: पंचविशात् परोऽव्यय:।।
प्रकृत्यन्तर्गतो देव: बहिरन्तश्च सर्वग:।
संकर्षणोऽप: सृष्टयादौ तासु वीर्यमसासृजत्।।
तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसावृतम्।
तत्रानिरूद्ध: प्रथमं व्यक्तीभूत: सनातन:।।

हिरण्यगर्भो भगवानेष छन्दसि पठयते। (सूर्यसिद्धान्त, अधिकार -12, श्लोक-12-14)

इस प्रकार हिरण्यगर्भ भगवान ने अहंकार मूर्ति ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि का आरम्भ कराया। ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा और नेत्रों से तेज स्वरूप सूर्य की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है।

आचार्य भास्कर ने सांख्यमत को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि –

यस्मात् क्षुब्ध प्रकृतिपुरूषाभ्यां महानस्य गर्भे
अहंकारोऽभूत खकशिखिजलोर्व्यस्तत: संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद् विरंचे
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत्तत्वमाद्यम्।।

अर्थात् प्रकृति और पुरूष के संघर्ष से महान् की उत्पत्ति हुई, महान से अहंकार तथा अहंकार से क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि-जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन दोनों सिद्धान्तों का मूल वेद ही है। ऋक् संहिता का मन्त्र 'ऋतं च सत्यं चाभद्धातपसोऽध्यजायत.. इत्यादि। तैत्तरीय ब्राह्मण का मन्त्र 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। इत्यादि तथा ''नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम् नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्'' इत्यादि मन्त्र भी उसी सृष्टि प्रक्रिया को प्रतिपादित करते हैं।

इसी प्रकार पर्जन्य विद्या, सौरमण्डल, अन्तरिक्ष, भूगोल आदि का विस्तृत वर्णन तथा सूर्य चन्द्रमा की गति से सम्बन्धित तिथि एवं नक्षत्रों का विवेचन स्पष्ट रूप से ज्योतिषशास्त्र का ही प्रतिपाद्य है। वेदों में इनका महत्वपूर्ण स्थान ज्योतिषशास्त्र की महत्ता को व्यक्त करने के साथ-साथ वेद के साथ अभिन्नता का भी परिचायक है। वैदिक काल में ही समस्त आकाशीय पिण्डों की पारस्परिक भिन्नता ज्ञात थी। भूमि पर स्थित प्राणी आकाश में प्रकाशमान पिण्डों को एक समान ही देखता है किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। समस्त प्रकाशमान पिण्डों में कुछ स्वयं प्रकाशित हैं तथा कुछ सूर्य से प्रकाशित हैं। स्वयं प्रकाशमान पिण्ड तारा एवं नक्षत्र वाचक हैं तथा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड ग्रह एवं उपग्रह संज्ञक हैं। तारों में भी चन्द्र पथ या सौर पथ में आने वाले, तारे नक्षत्र संज्ञक है तथा उनसे भिन्न स्थिति में रहने वाले तारे तारा संज्ञक हैं। वेदों में तारक मण्डल या तारा को ऋक्ष शब्द से व्यवहृत किया गया है।

''अमीय ऋक्षा निहिता स उच्चा''

सदैव उत्तर दिशा में में दिखाई देने वाले सात तारों के समूह को ऋक्ष मण्डल कहा गया है जिसे हम सप्तर्षि मण्डल कहते हैं। ऋक्ष शब्द का अर्थ 'भालू' होता है। सम्भवत: ऋक्ष शब्द का भालू अर्थ लेकर ही पाश्चात्यों ने वृहद सप्तर्षि मण्डल को Great bear तथा लघु सप्तर्षि मण्डल को Small bear नाम से सम्बोधित किया है। वर्तमान समय में भी ज्योतिषशास्त्र में ऋक्ष शब्द नक्षत्रों के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

लघु सप्तर्षि मण्डल को पुराणों में शिंशुमार कहा गया है। शिंशुमार के पुच्छ में स्थित तारा ध्रुव संज्ञक है। किन्तु यह स्थिर नहीं है। ध्रुव के सन्दर्भ में वैज्ञानिक भी लम्बे समय तक भ्रम में थे वे भी इसे स्थिर समझते थे। किन्तु पुराणों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है –

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिंशुमारे व्यवस्थित:।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि।।
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यै: ग्रहै: सह।
भ्रमन्तमुपगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्।।

अर्थात् ध्रुव तारा शिंशुमार चक्र समस्त ग्रहमण्डल को भ्रमण कराता हुआ स्वयं भी भ्रमण करता है। प्रख्यात दैवज्ञ कमलाकरभट्ट ने भी कठोर शब्दों में कहा है –

ध्रुवतारां स्थिरां ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धय:।

नक्षत्रों के सम्बन्ध में भी वेद और ज्योतिष में अभेद सम्बन्ध है। आज भी नक्षत्रों के वही नाम प्रचलित है जो वैदिक काल में थे। अन्तर इतना ही है कि वैदिक काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से, वेदांगज्योतिष काल में धनिष्ठा से तथा आज अश्विनी से गणना प्रारम्भ होती है। दूसरा अन्तर यह है कि वेदों में क्रम से नक्षत्रों के नाम नहीं दिए गए हैं। संकेताक्षर द्वारा सभी नक्षत्रों का उल्लेख है। यथा

– जौ द्राघ: खेश्वेहीरोषाचिन्मूषण्य: इत्यादि।

यहाँ जौ अर्थात् अश्वयुजौ (अश्विनी), द्रा = आर्द्रा इसी प्रकार नक्षत्रों का नाम ज्ञात हो पाता है। कहीं-कहीं तिष्य – भग- फल्गुनी नामों से भी व्यक्त किया गया है।

न केवल क्रान्तिवृत्त का सम्यग् ज्ञान उपलब्ध होता है अपितु नाड़ीवृत्तीय कालज्ञान भी पूर्णरूपेण व्यवहार में था। यद्यपि काल का विवेचन सभी वेदों में है। किन्तु अथर्ववेद में काल के सूक्ष्मतम अंश का उल्लेख है। अथर्व ज्योतिष से ज्ञात होता है कि उस समय वर्ष मान 366 दिनों का माना गया था, तथा मासों के नाम दो प्रकार से प्रचलित थे। कहीं –कहीं पर ''मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्च शुचि रेव च'' इत्यादि क्रमानुसार चैत्रादि मासों के नाम कहे गए हैं जो अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार में थे। दूसरी विधि का उल्लेख तैत्तरीय ब्राह्मण में इस प्रकार है –

1. अरूण (चैत्र)
2. अरूणज (वैशाख)
3. पुण्डरीक (ज्येष्ठ)
4. विश्वजित् (आषाढ़)
5. अभिजित् (श्रावण)
6. आर्द्र (भाद्रपद)
7. पिन्वमान (आश्विन)
8. अन्तवान (कार्तिक)
9. रसवान (मार्गशीर्ष)
10. इरावान (पौष)
11. सर्वौषध (माघ)
12. सम्भर (फाल्गुन)

इतना ही नहीं काल के सूक्ष्म निरूपण प्रसंग में एक सेकेण्ड से भी छोटी इकाईयों की भी कल्पना वैदिक साहित्य में उपलब्ध है जो वैदिक काल के गहन अनुसन्धान की ओर इंगित करती है। आधुनिक कालमान घण्टा, मिनट तथा सेकेण्ड के साथ तुलनात्मक मान निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है। अथर्ववेद में सबसे छोटी कालमान की इकाई निमेष है जिसे सेकेण्ड में परिवर्तन करने से ०.००८ सेकेण्ड के तुल्य होता है। शेष इस प्रकार है –

वैदिक कालमान		**वर्तमान कालमान**
१२ निमेष = १लव	=	०.१०६
३० लव = १ कला	=	३.२ सेकेण्ड
३० कला = १ त्रुटि	=	१.६ मिनट
३० त्रुटि =१ मुहूर्त्त	=	४८ मिनट
३० मुहूर्त्त = १ अहोरात्र	=	२४ घण्टा

इस प्रकार की सूक्ष्म कालगणना का इतिहास किसी भी प्राचीन संस्कृति के इतिहास में दृष्टिगत नहीं हुआ है। जब हम गणितीय दृष्टि से विचार करते हैं, तो आज की विवादास्पद स्थिति भी सुलझ जाती है। आधुनिक इतिहासकारों का अनुमान है कि रेखागणित का उद्भव भारत में नहीं हुआ है। यह सिद्धान्त मिश्र से भारत आया है किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रामक है। आपस्तम्ब और बौधायन शुल्बसूत्र इसके साक्षी है। शुल्ब का अर्थ रज्जु होता है। रज्जु रेखा की प्रतीक है। रस्सी से ही मापकर वेदी और यज्ञ कुण्डों हेतु क्षेत्र विन्यास किया जाता था। यज्ञवेदी और कुण्डों के आकार, चतुर्भुज, वृत्त एवं त्रिकोण आदि विभिन्न स्वरूपों में होते हैं। इनकी निर्माण विधि का विस्तृत विवेचन स्पष्ट रूप से रेखागणित के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते हैं। आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र के प्रथम पटल के 3 अध्यायों में शुद्ध रूप से रेखागणित का ही प्रतिपादन है। इनमें वृत्त और उनके परिधि-व्यास आदि अवयवों एवं उनके परस्पर सम्बन्धों का भी उल्लेख है। अत: रेखागणित का भी मूल वेद में होने से इसकी भारतीयता सिद्ध हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है, उसे ..... कहते हैं।
2. यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना ..... का परम लक्ष्य है।
3. शब्दशास्त्र वेद का ..... है।

4. ३० त्रुटि ..... के बराबर होता है।
5. १ अहोरात्र में ..... घण्टे होते हैं।

रेखागणित के अत्यन्त समीपवर्ती छाया गणित है, जिसके अन्तर्गत छाया से समय ज्ञान की प्रक्रिया प्रतिपादित है। वस्तुत: यह सिद्धान्त वेध प्रक्रिया का प्रथम चरण है जो वैदिक काल में ही आरम्भ हो गया था। दिन में 15 मुहूर्त्तों की कल्पना उस समय भी प्रचलित थी किन्तु उस समय के मुहूर्त्तों के नाम भिन्न थे। उन मुहूर्त्तों का ज्ञान छाया वेध द्वारा होता था। 12 अंगुल शंकु की छाया द्वारा मुहूर्त्तों का निर्धारण होता था। मूलत: मुहूर्तों की संख्या 8 है। आठवां अभिजित् मुहूर्त्त स्थिर होता है शेष रौद्र आदि सात मुहूर्त सूर्योदय से क्रमानुसार आरम्भ होकर अभिजित पर्यन्त जाते हैं। पुन: अभिजित के पश्चात् उत्क्रम से सूर्यास्त के समय रौद्र तक जाते हैं। छाया के ह्रास एवं वृद्धि के अनुसार मुहूर्त्तों का निर्धारण होता है। जो निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है –

छायामान		**मुहूर्त**	**संख्या**
∞ - ९६	अंगुल तक	रौद्र	१
९६- ६०	..	श्वेत	२
६०-१२	..	मैत्र	३
१२-६	..	सारभट	४
६-५	..	सावित्र	५
५-४	..	वैराज	६
४-३	..	विश्वावसु	७
स्थिर ३-३	..	अभिजित्	८
३-४	..	विश्वावसु	९
४-५	..	वैराज	१०
५-६	..	सावित्र	११
६-१२	..	सारभट	१२
१२-६०	..	मैत्र	१३
६०-९६	..	श्वेत	१४
९६ -∞	..	रौद्र	१५

इसी प्रकार रात्रि में भी पन्द्रह मुहूर्त होते है किन्तु उनका साधन कठिनाई से होगा। इनके अतिरिक्त 'पर्जन्य विद्या' जिसका विवेचन ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध में किया गया है, का विभिन्न

प्रकार का उल्लेख है। इन्द्र और वृत्त की कथा पूर्णरूप से पर्जन्य विद्या का ही प्रतिपादन करती है। श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने इन्द्र को सूर्य तथा वृत्त को हिम का प्रतीक माना है। इन्द्र और वृत्त के युद्ध को तिलक ने ध्रुव प्रदेशीय विप्लव बतलाया है। यास्क ने भी वृत्त को मेघ मानकर ही व्याख्या की है। वैदिक देवताओं में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सूर्य ही ज्योतिष शास्त्र के नियामक देवता है। सूर्य की सुषुम्ना रश्मि का सोम से प्रगाढ़ सम्बन्ध बतलाया है। सोमलता चन्द्रमा की कला के अनुसार बढ़ती है तथा कला के अनुसार घटती है। इसका यह भी अभिप्राय है कि सूर्य की सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमा को तथा सोमलता दोनों को ही विकसित करती है। सूर्य की प्रमुख सात रश्मियाँ भिन्न–भिन्न गुणों से युक्त है। एक-एक रश्मि एक-एक ग्रह को प्रभावित करती है। यथा-

सूर्य की सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमा को
हरिकेश .. .. नक्षत्रों को
विश्वकर्मा .. .. बुध को
विश्वव्यचा .. .. शुक्र को
संयदवसु .. .. भौम को
अर्वावसु .. .. गुरू को
स्वराट् .. .. शनि को प्रभावित करती हैं।

इन्हीं सात रश्मियों के कारण सूर्य को 'सप्त रश्मि' कहा जाता है। इन्हीं रश्मियों का विश्लेषण कर आधुनिक वैज्ञानिकों ने इनके रंगों के आधार पर BIVGYOR (Blue, Indigo, Voilet, Green, Yellow, Orange and Red) नाम से विभक्त किया है। यह स्थूल विवेचन है। सूक्ष्म विवेचन में सूर्य की संज्ञा सहस्र रश्मि हो जाती है। सूर्य की प्रत्येक रश्मियों में उक्त सात रश्मियाँ होती है तथा प्रत्येक रश्मियों सहस्र उप रश्मियाँ होती है। प्रत्येक रश्मि के गुण एवं कार्य भिन्न –भिन्न होते है।

इन सभी आधारों को देखते हुए तथा ज्योतिष शास्त्र के ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसे वेद से भिन्न मानने के लिए स्थान ही नहीं रहता। अत: ज्योतिष शास्त्र की सर्वांगीण वेदांगता स्वत: सिद्ध हो जाती है। इसके लिए स्वयं वेद ही प्रमाण है। प्रमाणान्तर की आवश्यकता ही नहीं है। आचार्य भास्कर की उक्ति ''वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्'' सर्वथा सिद्ध है।

3.4 वेदांग ज्योतिष –

वेदांग ज्योतिष कहने से ज्योतिष के उस भाग का बोध होता है, जो वैदिक ज्योतिष और

मानव ज्योतिष से भिन्न है। वेदांग कहते ही वेद के छ: अंगों का नाम सामने आ जाता है। ये हैं – व्याकरण, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा और छन्द। इन्हें षडंग भी कहा जाता है। अंगी वेद है और अंग वेदांग है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में लिखा है कि – वेद एक स्वयं दुरूह विषय ठहरा, भाषा तथा भाव दोनों की दृष्टि से। अतएव वेद का अर्थ जानने में, उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादान में तथा इस प्रकार की सहायता देने में जो उपयोगी शास्त्र हैं उन्हें वेदांग के नाम से पुकारते हैं।

षड् वेदांगों में से चार वेदांग भाषा से सम्बन्धित हैं – व्याकरण, निरूक्त, शिक्षा, छन्द। इन चार वेदांगों से वेद का यथार्थ बोध होता है। कल्प के चार विभाग हैं। श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब। इनमें से केवल शुल्ब ही वैज्ञानिक शाखा का प्रतिनिधित्व करता है। षष्ठ अंग है ज्योतिष। यह वेदांग पूर्णत: वैज्ञानिक, कालविधान कारक तथा वैदिक धारान्तर्गत भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है।

वेद किसी एक विषय पर केन्द्रित रचना नहीं है। विविध विषय और अनेक अर्थ को द्योतित करने वाली मन्त्र राशि वेदों में समाहित है। केवल ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन या किसी अन्य विषय का ग्रन्थ नहीं है वेद। अत: वेदों में किसी भी विषय का तारतम्य बद्ध अध्ययन नहीं है। इसीलिए वेदों को उत्स, मूल या आदि तो कह सकते हैं, पर विषय नहीं। भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि वेद में निहित है। कोई भी विषय मान्य और भारतीय दृष्टि से संवलित तभी मान जायेगा जब उसकी जड़े वेदचतुष्टय में कहीं न कहीं समाहित हों। अत: ज्योतिष भी वेदों में बीजरूप में दिखलाई पड़ता है। इसी बीज विषय को 'वैदिक ज्योतिष' कहते है।

वेदांग ज्योतिष की रचना महात्मा लगध ने की थी। उन्होंने ही इसकी रचना करके सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्र को स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया था। भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदांग वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। वेदांग ज्योतिषविद्या में और कलगणनापद्धति में अतीव महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले आचार्य लगध को और उन के पंचसंवत्सरमयम् इत्यादि वेदांगज्योतिषग्रन्थ को बहुत कम लोग जानते हैं। किन्तु वैदिकधर्मकृत्यों के कालों के निरूपण में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और अनुल्लंघनीय माना गया है। अयनचलन के विचार के लिए अत्यन्त उपयोगी करीब ३४०० वर्ष प्राचीन आलेख, जो भूमण्डल के अन्य देशों के ज्योतिषवांगमय में सर्वथा अनुपलब्ध है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने से कालगणनापद्धति के विषय में इस ग्रन्थ का लौकिक महत्व भी विलक्षण और अद्वितीय है।

3.4.1 लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय –

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया हैं।

वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें वेदांग ज्योतिष में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है। एक सौर वर्ष ३६६ दिनों का माना गया है, इसलिए ५ सौर वर्षों में ३६६ × ५ = १८३० सावन दिन होते हैं। एक युग में ६२ चान्द्रमास और ६० सौर मास होते हैं इस प्रकार ५ वर्ष में २ अधिमास होते हैं। इन २ अधिमासों में ३० तिथियाँ होती है। युग में ६७ नाक्षत्रमास होते हैं। इसमें चन्द्रमा ६७ × २७ = १८०९ नक्षत्रों को पार करता है। युग का आरम्भ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनान्त से होता है, जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों धनिष्ठा नक्षत्र पर होते है और माघमास का आरम्भ होता है। जैसे –

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तप: शुक्लोऽयनंह्युदक्।।

अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर आकाश में होते हैं तभी युग का आदि माघ और उत्तरायण का आरम्भ होता हैं, जो शुक्लपक्ष का आदि और तपमास होता है।

वेदांग ज्योतिष में स्पष्ट है कि तिथि नक्षत्रों के मान केवल चन्द्रमा, सूर्य के मध्यम गतियों की गणना के आधार पर बनाये गये गणितीय नियमों के अनुसार हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों और तिथियों के अंशात्मक विभाग उस समय तक नहीं किए गये थे। क्योंकि ५ वर्ष के सावन दिनों की संख्या और तिथियों की संख्या का अन्तर करके उसमें पक्ष संख्या से भाग देकर पाक्षिक तिथियाँ प्राप्त की गई हैं, और इसी प्रकार चन्द्रमा के नक्षत्र भोग दिनों में नक्षत्र संख्या से भाग देकर नक्षत्रों का मान उपलब्ध किया हुआ प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्रों के कोणीय मान का कोई निर्देश नहीं है। इस ग्रन्थ में बारह राशियों, सप्ताहों के दिन और ग्रहों के गतियों का कोई उल्लेख नहीं है। नीचे दिए गए तालिका में सौर वर्षों के वास्तविक दिन से वेदांग में पठित चान्द्रमासों और नाक्षत्रमासों के मानों से तुलना करते हैं:-

५ सौर वर्ष = ३६.५२५६३६२ × ५ = १८२६.२८१८१० दिन

६२ चान्द्र मास = २९.५३०५९ × ६२ = १८३०.८९६५ दिन

६७ नाक्षत्रमास = २७.३२१६६ × ६७ = १८३०.५५१२ दिन

महामहोपाध्याय श्री सुधारकर द्विवेदी जी ने वेदांग ज्योतिष के अनुसार निम्नांकित तालिका दी हैं –

१ युग में रविवर्ष = ५ = रविभगण

सौर मास = ६० सौर दिन = १८००

चान्द्रमास = ६२ चान्द्र दिन = १८६०

क्षय दिन = ३०

सावनदिन = १८३०

नक्षत्रोदय = १८३५

चन्द्रभगण = ६७

चन्द्रसावन दिन = १७६८

एक सौर वर्ष में सावन दिन = ३६६

एक सौर वर्ष में चान्द्र दिन = ३७२

एक सौर वर्ष में नक्षत्रोदय = ३६७

एक से द्वितीय अयन पर्यन्त सौर दिन = १८०

उपर्युक्त चान्द्र और पंचांगीय व्यवस्था के लिए माने हुए पंचवर्षीय युग में ६२ चान्द्रमासों और वास्तविक पाँच वर्ष के सौर दिवसों में ४.६०९७ का अन्तर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्तरायणारम्भ के दिन जब चन्द्रमा सूर्य एकत्रित हों वहाँ से आरम्भ कर गणना करने पर पाँच वर्ष के अन्त में उत्तरायणारम्भ का दिन ४.६०९७ के पीछे ही होगा और ६ युगों के अन्तर पर यह अन्तर लगभग एक चान्द्रमास तुल्य अर्थात् ४.६०९७ × ६ = २७.६५८२ हो जायेगा। इसलिए ६ वें युग के अन्त में एक अधिमास हो जायेगा, जो पंचांगीय योजना के लिए व्यर्थ होगा। भारतीय ज्योतिष के यशस्वी लेखक पं0 शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार ९५ वर्षों में ९५.२/५ = ३८ अधिमास प्राप्त होंगे। इसलिए वेदांग ज्योतिष के अनुसार ९५ वर्षों में अपेक्षित मासों के अतिरिक्त ३अधिमास और जुड़ते हैं, जिनको हटा देने पर ही पंचांगीय व्यवस्था शुद्ध हो सकती है। अत: ३२ वर्ष के काल में ६ युग में यदि हम १२ अधिमास कल्पना करें तो कुल ३६ अधिमास हो जायेगा, इसलिए अन्तिम९५ वें वर्ष में एक अधिमास और कम कर देने से ३५ अधिमास होंगे इस व्यवस्था में जिन अधिमासों को ग्रहण करते थे उन्हें संसर्प और जिन अधिमासों का त्याग करते थे उन्हें अंहस्पत्य (क्षयमास) कहते

थे। दीक्षित जी का यह भी मत है कि अधिमास तभी जोड़े जाते थे जब उनकी आवश्यकता होती थी। अत: यह कल्पना उचित ही जान पड़ती है।

3.4.2 वेदांग ज्योतिष में दिनमान –

वेदांग ज्योतिष में उत्तरायणारम्भ के दिनमान से दक्षिणायनारम्भ के दिन तक की गणना करके सबसे बड़े दिन (दक्षिणायनारम्भ के दिन) में सबसे छोटे दिन (उत्तरायणारम्भ के दिन) को घटाकर उसमें वर्ष के आधे दिन की संख्या में १८३ से भाग देकर लब्धितुल्य दैनिक वृद्धि से मध्यवर्ती दिनों का कालमान लाया गया है। किन्तु दिनमानों का अनुपात २/३ का है, अर्थात् सबसे छोटे दिन का डेढ़ा सबसे बड़ा दिन है, उससे जो चर घटी आती है वह ३५ अंश अक्षांश की होती है। खाल्दिया का अक्षांश भी यही है। इसलिए कुछ यूरोपियन यह मानते हैं कि वेदांग ज्योतिष के समय आर्यों का निवास उत्तर –पंजाब सीमा प्रान्त और कश्मीर तथा अफगानिस्तान में था। यहाँ का अक्षांश ३२ अंश है और किरणवक्री भवनसंस्कार से भी ९ मिनट दिनमान बढ़ सकता है, तथा जल घड़ी के द्वारा कालमापन विधि के व्यवहार से भी कुछ अन्तर सम्भव है। इस प्रकार वेदांग ज्योतिष का विषय शुद्ध भारतीय है उसके लिए दूसरा प्रमाण नक्षत्रों में लग्न की गणना है वेदांग ज्योतिष में कहा गया है कि –

श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान् प्राग्विलग्नान् विनिर्दिर्शेत् (आर्च ज्योतिष १९)

अर्थात् धनिष्ठा से गणना कर पूर्व क्षितिज में लगे हुए नक्षत्रों के लग्नों का फल उसमें नहीं दिया गया है, किन्तु आगे चलकर अथर्व ज्योतिष में हम नक्षत्रों का फल देखते हैं और जन्म, सम्पत्ति, विपत्ति, क्षेम, प्रत्यरि, साधक,वध, मैत्र और अतिमैत्र ये नौ संज्ञायें जन्म नक्षत्र से आरम्भ कर बतलाई गयी हैं तथा उनके फल भी नाम के तुल्य ही कहे गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदांग ज्योतिष काल में गणित एवं फलित ज्योतिष की सच्ची नींव पड़ चुकी थी।

बार्हस्पत्य संवत्सर का, क्षयमास का, मेष वृष इत्यादि राशियों का, सौर संक्रान्तियों का, आदित्यवार सोमवार इत्यादि वारों का, सूर्य-चन्द्र ग्रहणों का, मंगल-बुधादि ग्रहों का, वृहस्पति के और शुक्र के उदय और अस्त का भी वेद मन्त्रों में ब्राह्मणग्रन्थों में श्रौतसूत्रों में गृह्यसूत्रों में और धर्मसूत्रों में भी अपेक्षा न होने से लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिषग्रन्थ में भी इन विषयों का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

वैदिक परम्परा में संवत्सर का अत्यधिक महत्व है। शतपथब्राह्मण में अनेक स्थलों में संवत्सर को प्रजापति बताया गया है। शतपथब्राह्मण में संवत्सर को प्रजापति की प्रतिमा भी कहा गया है। वैदिक, चयनयाग संवत्सर के ही अनुकरण में आधृत दिखाई देता है। अहोरात्र,पक्ष, मास,ऋतु

सभी संवत्सर में ही आधृत माने गये हैं। वेद की इसी मान्यता को ध्यान में रखकर ही ज्योतिषी गर्गाचार्य ने भी संवत्सर का स्वरूप निश्चित होने पर ही अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और दिन निश्चित हो सकने की और अयनादि कालों में विहित धर्मकृत्य भी ठीक- ठीक समय में हो सकने की की बात बताई है। उन का वचन है –

अयनान्यृतवो मासा: पक्षासत्वृक्षं तिथिर दिनम्।
तत्वतो नाऽधिगम्यन्ते यदाऽब्दो नाऽधिगम्यते।।
यदा तु तत्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधै:।
तदैवैषाममोह: स्यात् क्रियाणां चाऽपि सर्वश:।।

इस स्थिति में वैदिक मूल परम्परा के संवत्सर के वास्तविक स्वरूप का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

महात्मा लगध द्वारा रचित वेदांग ज्योतिष की चर्चा अर्वाचीन काल में पाश्चात्य संस्कृतविद् कोलब्रूक, मैक्समूलर,याकोबि, वेबर, थिबो इत्यादि लोगों ने भी की है। भारतीय लोगों में शंकर बालकृष्णदीक्षित, लाला छोटेलाल (बार्हस्पत्य), सुधाकर द्विवेदी, बालगंगाधर तिलक, योगेश चन्द्र राय, शामशास्त्री, गोरखप्रसाद, सत्यप्रकाश इत्यादि लोगों ने भी इस ग्रन्थ की चर्चा की है। इस ग्रन्थ का वर्तमान काल में भी वैदिक धर्म के अग्न्याधान- दर्शपूर्णमासादि यज्ञों में और नामकरण – उपनयन विवाहादि संस्कारों में अपेक्षित कालज्ञान के उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग हो सकने के विषय में उन लोगों ने सम्यक् विचार नहीं किया है।

3.4.3 वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष में अन्तर –

प्रायश: विद्वान वेदांग ज्योतिष को ही वैदिक ज्योतिष भी समझ लेने की भूल करते हैं। ऋषियों के अन्त:करण में दृष्ट मन्त्र ज्योतिष के तत्व को धारण किये हुए हैं तो उसे वैदिक ज्योतिष कहा जाता है, जबकि वेदांग ज्योतिष विषयों को तारतम्य बद्ध तरीके से प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष का कर्ता ऋषि बीज तो वेद से लेता है पर उसका पल्लवन अपनी बुद्धि और प्रयोग के अनुभव के आधार पर करता है। यही कारण है कि वेदांग ज्योतिष में बहुत कुछ तारतम्यबद्ध लिखा मिलता है। ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती हैं। अत: वेद अपौरूषेय हैं। वेदांग ऋषि बुद्धि से प्रायोगिक या अनुभव के स्तर पर रचित होने के कारण अपौरूषेय हैं। आधुनिक रूपकों से स्पष्ट करना हो तो इसे प्रातिभस्फुरण कह सकते हैं।

3.4.4 वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का काल –

अब तक जितने स्वनामधन्य मनीषियों ने वेदों के काल का अनुमान लगाया है वह सारा का सारा अनुमान खण्डित होता नजर आ रहा है। उपग्रहों के द्वारा कृष्ण की द्वारकापुरी समुद्र में ढूँढ ली गयी है। सेतुबन्ध रामेश्वरम का अस्तित्व विज्ञान की नजरों में समा चुका है। अत: ५१०० वर्ष का काल तो महाभारत को ही समर्पित हो जायेगा। कोई ऐसा कारण भी नहीं है हम वेद काल या वेदांग काल को ईसा पूर्व १४०० वर्ष का मानें। अत: कालविभाजन की वे सारी मेड़ें स्वयं ध्वस्त होती चली जा रही हैं जिनसे सारी सृष्टि को ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के अंदर धकेलने का प्रयास किया गया था। यूरोपियन एकेडमी का चश्मा अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और स्वयं वहीं के वैज्ञानिकों ने बाइबिल की उस मान्यता को निरस्त कर दिया है जिसमें सृष्टि को मात्र छ: हजार वर्ष प्राचीन कहा गया है। यानी ईसा पूर्व का चार हजार वर्ष का समय और ईसा पश्चात् का दो हजार वर्ष का समय। प्रस्तुत शीर्षक में वेदांग या वेद का कालनिर्धारण करना शक्य नहीं है। ध्येय केवल इतना है कि अंग्रेजों द्वारा निर्धारित काल गणना का पुरातात्विक प्रमाणभूत मानदण्ड ईसा पूर्व ३२० वर्ष अन्य प्रमाणों के उपलब्ध हो जाने के कारण ध्वस्त हो चुका है। अब कालगणना का मानदण्ड महाभारत है। महाभारत को मिथक या काल्पनिक ग्रन्थ कह कर पल्ला झाड़ने वाले क्रूर भाषावैज्ञानिक ही हो सकते हैं। महाभारत में विद्यमान ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का भी अन्तर स्पष्ट है।

श्रुति परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उसके जन्म का अनुमान लिपि परम्परा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अत: सर्वप्रथम काल गणना का मानदण्ड महाभारत पूर्व महाभारत पश्चात् निश्चित करना होगा। यदि काल गणना का मानदण्ड ए.डी. या बी.सी. होगा तो उससे बेहतर है कि हम संस्कृत और वैदिक वांगमय का इतिहास निर्धारित ही न करें। हमें कलियुगाब्द को ऐतिहासिक मानना ही होगा। इस दिशा में हमारे पास तत्कालीन राजाओं को सौ –सौ वर्षीय परम्परायें भी प्राप्त हैं। अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण प्रदत्त शाप कि महाभारत समाप्ति के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक तुम पृथ्वी पर विकल घूमते रहोगे यह सिद्ध करता है कि ईसामसीह से पूर्व का तीन हजार वर्ष का समय भारतीय मनीषियों की दृष्टि से फिसल नहीं सकता। हमारे पंचांगों में जो सृष्ट्यादि काल गणना है वह १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख ८५ हजार, एक सौ वर्ष से आगे बढ़ रही है। इसी का अंतिम चार अंक कल्यब्द है जो ५१०७ या निरन्तर एकोत्तर वर्ष अधिक है। इसी पूरी गणना से आज भी ग्रहगणित होता है।

कुछ ऐसे भी ऋषि हैं, जिन्होंने मन्त्रों के दर्शन किये हैं और अलग से अपनी ज्योतिष संहितायें भी लिखी हैं। ऐसे ऋषियों में भारद्वाज, अगस्त्य, वसिष्ठ आदि प्रमुख हैं। इन ऋषियों ने वेद की ऋचाओं

या मंत्रों को पृथक् रखा और स्वकृत रचना को संहिता (ज्योतिष) कहा। एक ही ऋषि का विषयगत यह पार्थक्य अपूर्व है। ज्योतिष संहिताओं की भाषा शैली वेद मंत्रों से सर्वथा पृथक् है। ऋचाओं में दृष्ट तत्व क्यों और कैसे की व्याख्या नहीं करता, जबकि संहिता ग्रन्थों में वर्णित विषय गणित और सूत्रात्मक प्रक्रिया से आबद्ध हैं। इस विषय को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में विद्यमान अरबों प्रकाशवर्ष दूर स्थित किसी पिण्ड को टेलिस्कोप से देखा तो जा सकता है, पर गणितीय प्रक्रिया में उसे ढ़ालने के लिए गणितीय सूत्रात्मक व्यवस्था देनी होती है। यह गणितीय प्रक्रिया मन्त्र आविर्भाव से मनुष्य रचित विषय का अन्तर प्रकट करती है। गणितज्योतिष का ज्ञाता स्नातक अच्छी तरह से जानता है कि यन्त्र दृष्ट और गणितसिद्ध में यथाकाल अन्तर आने लगता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. षड् वेदांगों में एक नहीं है -

   क. शिक्षा ख. ज्योतिष ग. व्याकरण घ. उपनिषद

2. ब्रह्मा के मन से किसकी उत्पत्ति हुई है –

   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. ग्रहों की घ. वायु

3. सूर्यसिद्धान्तानुसार पृथ्वी की उत्पत्ति किससे हुई है –

   क. जल ख. अग्नि ग. वायु घ. आकाश

4. 'ऋक्ष' शब्द का अर्थ है –

   क. वानर ख.भालू ग. नक्षत्र घ. ग्रह

5. विश्वजित् किस मास का पर्याय है –

   क. चैत्र ख. वैशाख ग. ज्येष्ठ घ. आषाढ़

6. ३० लव = ?

   क. १ विकला ख. १ कला ग. १ निमेष घ. कोई नहीं

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है। उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंङ्गानि। यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की

उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अत: इसे वेदांग की संज्ञा दी गई है। शब्दशास्त्र, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा तथा छन्द इन छ: शास्त्रों द्वारा वेद का सम्यग् ज्ञान सम्भव होता है। अत: छ: शास्त्रों को वेदांग कहा गया है। यद्यपि इन शास्त्रों को वेदांग सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वत: सिद्ध वेद के अंग हैं। तथापि ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता के प्रमाणों का उद्धरण इस इकाई में निहित है। प्राचीनकाल से आज तक वेदों की जितनी प्रकार की व्याख्याएँ हुई है उनसे स्पष्ट होता है वेद को मुख्य दो धाराओं में अब तक जाना गया है। प्रथम धारा वेद की यज्ञपरक व्याख्या करती है और दूसरी कर्मपरक।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

वैदिक ज्योतिष – ऋक, साम, यजु एवं अथर्व ज्योतिष से सम्बन्धित ज्योतिष को वैदिक ज्योतिष कहा जाता है।

वेदाङ्ग ज्योतिष – वेदाङ्ग ज्योतिष महात्मा लगध की कृति है।

अंग - किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है। उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंङ्गानि।

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँच अंगों से जो मिलकर बनता है, उसे पंचांग कहते है।

दिनमान – दिन सम्बन्धि मान को दिनमान कहते है। सम्पूर्ण दिनमान (दिन और रात्रि मिलाकर) ६० घटी का होता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. अंग 2. वेद 3. मुख 4. मुहूर्त्त 5. 24

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. घ 2. ख 3. क 4. ख 5. घ 6. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक- भास्कराचार्य, टिकाकार- आचार्य सत्यदेव शर्मा, प्रकाशक – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।

(ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध, टिकाकार- आचार्य कौण्डिण्यायन, प्रकाशक स्थान – चौखम्भा वाराणसी।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिका – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय, आचार्य कपीलेश्वर शास्त्री, प्रकाशक – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।

(घ) तैतिरीय ब्राह्मण

(ड.) भारतीय ज्योतिष – आचार्य शंकरबालकृष्ण दीक्षित।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. प्राच्यविद्यानुशीलनम् - लेखक - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक – नैसर्गिकी शोध संस्थान वाराणसी।

2. भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

3. वेदांग ज्योतिष – आचार्य कौण्डिन्यायन

4. ज्योतिष शास्त्र – लेखक – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय।

5. सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की वेदांगता पर प्रकाश डालिये।
2. वेदांग ज्योतिष से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
3. वैदिक ज्योतिष एवं वेदांग ज्योतिष में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. वेदांग ज्योतिष पर निबन्ध लिखिये।
5. लगधप्रोक्त वेदांग ज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषयों का उल्लेख कीजिये।

इकाई – 4 ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक एवं आचार्य

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक
4.4 ज्योतिष शास्त्रीय आचार्य परम्परा
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्द
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-501 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता एवं वेदांग ज्योतिष से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक एवं आचार्य के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

प्रवर्त्तक का अर्थ है – प्राचीन ऋषि, जिन्होंने ज्योतिष शास्त्र का प्रतिपादन किया। आचार्य से तात्पर्य ज्योतिष शास्त्र की परम्परा को निर्वहन करने वाले तथा उसकी अक्षुण्णता को बनाये रखने वालों से है।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों का बारे में जानने का प्रयास करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिष शास्त्र के मूल प्रवर्त्तक कौन-कौन हैं, जान लेंगे।
- प्रवर्त्तक और आचार्य में अन्तर समझ लेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों से परिचित हो जायेगें।
- प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों की परम्परा से अवगत हो जायेगें।
- ज्योतिषशास्त्र के ऋषियों एवं आचार्यों की महत्ता समझ लेंगे।

4.3 ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक

वेद किसी शास्त्र विशेष का ग्रन्थ नहीं है। अत: वहाँ किसी भी शास्त्र विशेष का सांगोपांग वर्णन एकत्र नहीं देखा जाता है। किन्तु प्रसंगवश सभी शास्त्रों का दिग्दर्शन अवश्य होता है। ज्योतिष तो वेदांग ही है। इसलिए इस का वर्णन स्वाभाविक है। इस प्रकार इस शास्त्र का प्रवर्त्तक तो वेद है। कालक्रम में इस शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय उन्हें मिला है और इतिहास में उल्लेख भी उनमें सर्वप्रमुख है –

सूर्य: पितामहो व्यास: वशिष्ठोऽत्रि पराशर:।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचि मनुरंगिरा ।।
लोमश: पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगो:।
शौनकोऽष्टदशाश्चैते ज्योतिषशास्त्रप्रवर्त्तका:।।

1. सूर्य 2. पितामह 3. व्यास 4. वशिष्ठ 5. अत्रि 6. पराशर 7. कश्यप 8. नारद 9. गर्ग 10. मरीचि 11. मनु 12. अंगिरा 13. लोमश 14. पौलिश 15. च्यवन 16. यवन 17. भृगु 18. शौनक।

सूर्य – वराहमिहिर ने अपनी पंचसिद्धान्तिका में सूर्यसिद्धान्त का वर्णन किया है। इससे पृथक् भी एक स्वतन्त्र सूर्यसिद्धान्त नाम का ग्रन्थ उपलब्ध होता है। इसमें कहा गया है कि कृतयुग (सत्ययुग) के अन्त में मय दानव ने भगवान सूर्य की तपस्या की थी और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान सूर्य ने अपने अंश पुरूष द्वारा मय दानव को ग्रहगणित का सम्पूर्ण विषय ज्ञान करवाया था।

पितामह – पितामह द्वारा लिखित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। वराहमिहिर द्वारा लिखित पंचसिद्धान्तिका में पितामहसिद्धान्त भी है। सम्प्रति ब्रह्मसिद्धान्त के नाम से तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त, शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त और तीसरा विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अन्तर्गत वर्णित ब्रह्मसिद्धान्त।

व्यास – पौराणिक वर्णनों से प्रतीत होता है कि व्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है अपितु उपाधि है। प्रत्येक युग के आदि में ईश्वरीय प्रेरणा से पुराणों का सविस्तर व्याख्यान करने वाले को व्यास कहा जाता है। कृष्णद्वैपायन ऋषि जो सत्यवती का पुत्र माना जाता है इस युग में व्यास के नाम से जाने जाते है। व्यास लिखित कोई स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है किन्तु विभिन्न पुराणों में ज्योतिषशास्त्र का पर्याप्त वर्णन मिलता है।

वसिष्ठ – कतिपय उल्लेखों के आधार पर यह तथ्य उजागर होता है कि वशिष्ठ के सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीनों स्कन्धों के ग्रन्थ थे किन्तु आजकल केवल वशिष्ठ संहिता और वृद्ध वशिष्ठ संहिता नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। वशिष्ठ सिद्धान्त का उल्लेख तो मिलता है किन्तु पंचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त ग्रन्थ देखने को नहीं मिले है।

अत्रि – प्रसंगवश अनेक स्थानों पर अत्रि का नामोल्लेख मिलता है किन्तु स्वतन्त्र ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। प्रमाणों के आधार पर ऐसा लगता है कि अत्रि को ग्रहणादि साधन में विशेष दक्षता प्राप्त थी।

पराशर – पराशर द्वारा लिखित लघुपराशरी, मध्यपाराशरी, वृहत्पराशरहोराशास्त्र नाम के तीनों होराशास्त्रीय ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं और सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि मध्यपाराशरी के विषय में मतान्तर भी है।

नारद – नारदसंहिता के नाम से कुछ मातृकाएँ उपलब्ध हैं। अनेक स्थलों से इसका प्रकाशन भी हुआ है। अलग-अलग प्रतियों में पाठान्तर कुछ अधिक ही देखने को मिलते है। नारदपुराण में भी

अनेकों अध्याय ज्योतिषशास्त्र विषयक है।

गर्ग – गर्ग संहिता नाम का ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त भट्टोत्पलटीका में अनेक स्थलों पर गर्ग के वचनों का उल्लेख मिलता है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनु – मनु विरचित मनुस्मृति धर्मशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ है। किन्तु उसमें ज्योतिष सम्बन्धी बहुत सारी बातें मिलती है। स्वतन्त्र रूप से भी इनका ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ रहा हो यह सम्भव तो है किन्तु इस समय उपलब्ध नहीं है। प्राचीनग्रन्थों में मनु विरचित स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

भृगु – भृगुसंहिता के अनेक संस्करण मिलते हैं। प्रशस्ति के अनुसार कोई भी संस्करण नहीं है। अनेक स्थानों पर खण्डित मातृकाएँ हैं भी, तो वे प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती है।

मरीचि – मरीचि का स्वतन्त्र ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है किन्तु उद्धरण बहुत्र प्राप्त होते हैं।

लोमश – रोमक सिद्धान्त को कुछ लोग लोमश सिद्धान्त मानते हैं। यह पंचसिद्धान्तिका के पाँच सिद्धान्तों से एक है। इसके अतिरिक्त इसका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

पौलिश – पंचसिद्धान्तिका में यह सिद्धान्त समाहित है। पृथक् तया पौलिश सिद्धान्त नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह पुलस्त्य ऋषि द्वारा विरचित है।

कश्यप, अंगिरा एवं च्यवन का उल्लेख प्रवर्तक के रूप में तो है किन्तु कृतियों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यापन, वेध और अन्य प्रकार के प्रयोग में दक्षता होने के कारण ये आचार्य प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुए होंगे।

यवन – यवन जातक, वृद्धयवन जातक आदि ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है। हो सकता है ये ग्रन्थ इसी परम्परा के हो।

शौनक – यह प्रसिद्ध ऋषि तो हैं किन्तु इनकी ज्योतिषशास्त्रीय कृति नहीं मिलती है। इतिहास में भी कृति का उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि शौनक की भी प्रसिद्धि कश्यप, अंगिरा एवं च्यवन की तरह अध्यापन की विशिष्टता, शिष्यपरम्परा, वेध और अन्य ज्योतिषीय प्रयोग की दक्षता के लिए ही रही है।

4.4 ज्योतिष शास्त्रीय आचार्य परम्परा

वैदिक काल –

इस समय अन्य शास्त्रों की तरह ज्योतिषशास्त्र की भी स्थिति थी। विभिन्न वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, स्मृतियों आदि में प्रसंगवश ज्योतिषशास्त्र के सभी स्कन्धों के विषयों के उल्लेख मिलते हैं।

वेदांग काल –इस समय वेदांग ज्योतिष का प्रचार-प्रसार था। जिसके रचयिता महात्मा लगध माने जाते है। प्रतीत होता है कि इस समय अध्ययन –अध्यापन की परम्परा अधिक सुदृढ़ थी। लेखन पर बहुत ध्यान नहीं दिया गया। वेदांग ज्योतिष भी वैदिकोंको पाठ करने में सुविधा की दृष्टि से अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया, ताकि वेदपाठी आचार्य वेद के साथ वेदांग का भी पाठ कर सकें। उस समय इसके अतिरिक्त अन्य रचनायें अवश्य रही होंगीं। किन्तु आज क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्नलिखित में ज्योतिष शास्त्र है –
   क. वेद ख. वेदांग ग. उपनिषद घ. साहित्य
2. शास्त्रों का मूल प्रवर्तक कौन है –
   क. पुराण ख. उपनिषद ग.वेद घ. वेदांग
3. पंचसिद्धान्तिका किसकी रचना है –
   क. आर्यभट्ट ख. वराहमिहिर ग.कमलाकर घ. गणेश
4. लघुपराशरी किसकी कृति है –
   क. आचार्य पराशर ख. वराहमिहिर ग. कमलाकर घ. गणेश
5. वेदांग काल के सुप्रसिद्ध आचार्य है –
   क. लगध ख. गणेश दैवज्ञ ग. कमलाकर घ. भास्कर

सिद्धान्त काल –

इस समय अनेक विशिष्ट आचार्य हुए, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न स्कन्धों में या कुछ एक स्कन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किए। कुछ आचार्यों की कृतियाँ उपलब्ध भी हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि जिनकी कृतियाँ उपलब्ध हैं सिर्फ उतने ही आचार्य उस समय हुए। अधिकांश विद्वानों की तो अध्ययन- अध्यापन की ही परम्परा रही है। सम्भवत: कुछ ही लोग लेखन परम्परा में अधिक रूचि रखते थे। अध्ययन –अध्यापन की परम्परा में असंख्य आचार्य रहे होंगे जिनका नाम इतिहास में देखने को नहीं मिलता है। जिन आचार्यों की कृतियाँ उपलब्ध हैं या इतिहास में उल्लेख है, उनमें प्रमुख हैं –

क्रम संख	आचार्य	काल
१.	आर्यभट्ट	ई.स. ४७६
२.	लल्ल	४८९ ई.
३.	वराहमिहिर	५०५ ई.

४.	कल्याणवर्मा	५७८ ई.
५.	ब्रह्मगुप्त	५९८ ई.
६.	मुञ्जाल	६६२ ई.
७.	वित्तेश्वर	८१९ ई.
८.	महावीर	८५३ ई.
९.	मुञ्जाल	९३५ ई.
१०.	द्वितीय आर्यभट्ट	९५३ ई.
११.	उत्पल भट्टोत्पल	९६६ ई. शक ८८८
१२.	विजयनन्दि	९६६ ई.
१३.	बलभद्र	९६६ ई.
१४.	श्रीधराचार्य	९९१ ई. शक ९१३
१५.	पद्मनाभ मिश्र	-
१६.	महेश्वर	१०१८ ई.
१७.	श्रीपति	१०३९ ई.
१८.	पृथुदक्स्वामी	१०४० ई.
१९.	भानुभट्ट	१०४० ई.
२०.	भोजराज	१०४२ ई.
२१.	राज्यमृगांक	१०४२ ई.
२२.	बल्लालसेन	१०६० ई.
२३.	शतानन्द	१०९१ ई.
२४.	ब्रह्मदेव	१०९२ ई.
२५.	भास्कर	१११४ ई.
२६.	वरूण	११५० ई.
२७.	अनन्तदेव	१२२२ ई.
२८.	केशवार्क	१२४२ ई. (शक ११६४)
२९.	कालिदास	१२४२ ई. (शक ११६४)
३०.	माधव	१२६३ ई.

३१.	महादेव	१२७८ ई.
३२.	महेन्द्रसूरि	१३२० ई.
३३.	महादेव द्वितीय	१३५७ ई. (शक १२७९)
३४.	मकरन्द	१४३८ ई. शक १३६०
३५.	केशव	१४५६ ई.
३६.	लक्ष्मीदास	१५०० ई. शक १४२२
३७.	ज्ञानराज	१५०३ ई.
३८.	गणेश	१५०७ ई.
३९.	अनन्तदैवज्ञ	१५२५ ई.
४०	अनन्तदैवज्ञ द्वितीय	१५३७ ई.
४१	सूर्य	१५४१ ई.
४२	ढुण्ढिराज	१५४१ ई.
४३	विष्णुदैवज्ञ	१५६६ ई.
४४	कृष्णदैवज्ञ	१५६५ ई.
४५	नीलकण्ठ	१५५७ ई.
४६	रघुनाथ शर्मा	१५६५ ई.
४७	रामदैवज्ञ (रामाचार्य)	१५६५ ई0 शक १४८७
४८	गोविन्द दैवज्ञ	१५६९ ई0 शक १४९१
४९	मल्लारि	१५७१ ई0 शक १४९३
५०	नारायण	१५७१ ई0 शक १४९३
५१	रंगनाथ	१५७३ ई0 शक १४९५
५२	गणेश	१५७८ ई0 शक १५००
५३	विश्वनाथ	१५७८ ई0 शक १५००
५४	नृसिंहदैवज्ञ	१५८६ ई0 शक १५०८
५५	विट्ठल दीक्षित	१५८७ ई0 शक १५०९
५६	नारायण	१५८८ ई0 शक १५१०
५७	शिवदैवज्ञ	१५९१ ई0 शक १५१३

५८	बलभद्र मिश्र	१५९२ ई0 शक १५१४
५९	सोमदैवज्ञ	१६०२ ई0 शक १५२४
६०	मुनीश्वर	१६०३ ई0 शक १५२५
६१	दिवाकर	१६०६ ई0 शक १५२८
६२	कमलाकर	१६१६ ई0 शक १५३८
६३	नित्यानन्द	१६३९ ई0 शक १५६१
६४	रंगनाथ	१६४० ई0 शक १५६२
६५	जगन्नाथ सम्राट	१६५२ ई0 शक १५७४
६६	जयसिंह	१६९३ ई0
६७	दादाभट्ट	१७१९ ई0
६८	शंकर	१७२६ ई0 शक १६४८
६९	शिवलाल पाठक	१७३४ ई0 शक १६५६
७०	गंगाधर	१७३४ ई0 शक १६५६
७१	चिन्तामणि दीक्षित	१७३६ ई0 शक १६५८
७२	परमानन्द पाठक	१७४८ ई0 शक १६७०
७३	लक्ष्मीपति	१७४८ ई0 शक १६७०
७४	बबुआ ज्योतिषी	१७५६ ई0 शक १६७८
७५	मथुरानाथ शुक्ल	१७५८ ई0 शक १६८०
७६	परमसुखोपाध्याय	१७६८ ई0 शक १६९०
७७	बालकृष्ण ज्योतिषी	१७७० ई0 शक १६९२
७८	मणिराम	१७७४ ई0 शक १६९६
७९	कृष्णदेव	१७७५ ई0 शक १६९७
८०	शिवदैवज्ञ	१७७८ ई0 शक १७००
८१	भुला	१७८१ ई0 शक १७०३
८२	गोविन्दाचारी	१७८४ ई0 शक १७१६
८३	दुर्गाशंकर पाठक	१७८७ ई0 शक १७०९
८४	जयराम ज्योतिषी	१७९५ ई0 शक १७१७

८५	सेवाराम शर्मा	१७९५ ई0 शक १७१७

आधुनिक काल

आधुनिक काल में ज्योतिषशास्त्र के अनेक विशिष्ट आचार्य हुए। अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से परम्परा अत्यन्त सुदृढ़ रही। आचार्यों ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे और पूर्ववर्ती ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी। इन ग्रन्थों और टीकाओं से प्रतीत होता है कि वे इस शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान रहे होंगे। कुछ मूलग्रन्थ आज भी विश्वप्रसिद्ध है। अध्ययन –अध्यापन की परम्परा में जिन आचार्यों ने योगदान किया उनका नामोल्लेख सम्भव नहीं हो पा रहा है क्योंकि लिखित या मौखिक साक्ष्य नहीं मिल पा रहा है। फिर भी परम्परा से जितने विद्वानों का पता चल पाया है प्रयास किया है उनके नामों का स्मरण करने का। जिनकी टीका, टिप्पणी या मूलग्रन्थ आदि उपलब्ध हैं या इतिहास में प्रामाणिक उद्धरण प्राप्त है या प्रसंगवश नाम आए है और लेखक या सम्पादक की दृष्टि वहाँ तक पहुँच पायी है, उनका नामोल्लेख करने का यहाँ प्रयास किया गया है-

1. लज्जाशंकर शर्मा १८०४ ई. शक १७२६
2. नन्दलाल शर्मा १८०४ ई. शक १७२६
3. राघव १८१० ई. शक १७३२
4. शिव १८१५ ई. शक १७३७
5. देवकृष्ण शर्मा १८१८ ई. शक १७४०
6. नृसिंहदेव शास्त्री या बापूदेव शास्त्री १८२१ ई. शक १७४०
7. नीलाम्बर शर्मा १८२३ ई. शक १७४५
8. केरो लक्ष्मण १८२४ ई. शक १७४६
9. विशाजी रघुनाथ लेले १८२७ ई. शक १७४९
10. रघुनाथ आचार्य १८२८ ई. शक १७५०
11. गोविन्द देव शास्त्री १८३४ ई. शक १७५६
12. कृष्णशास्त्री गोडबोले १८५३ ई. शक १७७५
13. वेंकटेश बापूजी केतकर १८५३ ई. शक १७७५
14. बालगंगाधर तिलक १८५६ ई. शक १७७८

15. विनायक पाण्डुरंग खाना पुरकर १८५८ ई. शक १७८०
16. सुधाकर द्विवेदी १८६० ई. शक १७८२
17. दिनकर १८८१ ई. शक १८०३
18. यज्ञेश्वर (बाबा जोशी राडे) १७७८ ई. शक १७०० के आसपास
19. सामन्त चन्द्रशेखर १८६६ ई.
20. नीलकण्ठ
21. आचार्य पद्माकर द्विवेदी
22. आचार्य बलदेव पाठक
23. आचार्य अनुप मिश्र
24. आचार्य डी. अर्किसोमयाजि
25. आचार्य गंगाधर मिश्र
26. आचार्य चन्द्रशेखर झा
27. आचार्य गेंदालाल चौधरी
28. आचार्य सीताराम झा
29. आचार्य बलदेव मिश्र
30. आचार्य मुरलीधर मिश्र
31. आचार्य अच्युतानन्द झा
32. आचार्य नीलाम्बर झा

वर्तमान काल

वर्तमान काल में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन–अध्यापन एवं शोध देश के विभिन्न संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संचालित हैं। जिसमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संस्कृत की सबसे बड़ी संस्था राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान (मानित विश्वविद्यालय), श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (तिरूपति), उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, कविकुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, कामेश्वर सिहं दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, जगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय आदि प्रमख हैं। सम्प्रति उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय भारतवर्ष की एकमात्र ऐसी शिक्षण संस्था है जिसके द्वारा दूरस्थ माध्यम से ज्योतिष विषय की समस्त पाठ्यक्रम संचालित की जा रही है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सामान्य विश्वविद्यालयों में भी विगत 2- 3 वर्षों से इस शास्त्र का अध्ययन–अध्यापन कार्य चलाया जा रहा है। इस समय ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों में अच्छे विद्वान हुए हैं। सिद्धान्त और संहिता स्कन्ध में प्रायोगिक रूप से कम काम हो रहे है। अध्ययन – अध्यापन या लेखन में जिनका योगदान रहा है और इस कार्य में लगे हुए लोगों की वहाँ तक पहुँच पायी है। उनमें प्रमुख हैं –

1. आचार्य अवध बिहारी त्रिपाठी 2. आचार्य संकटा प्रसाद उपाध्याय 3. आचार्य कपिलेश्वर चौधरी 4. आचार्य देवचन्द्र झा 5. आचार्य केदार दत्त जोशी 6. आचार्य राजमोहन उपाध्याय 7. आचार्य सुवंश झा 8. आचार्य गणेश दत्त पाठक 9. आचार्य गणपति देव शास्त्री 10. आचार्य विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाण्डेय 11. आचार्य मुनीलाल झा 12. आचार्य गणेश ज्योतिषी 13. आचार्य रामयत्न ओझा 14. आचार्य अयोध्या नाथ शर्मा 15. आचार्य रामव्यास पाण्डेय 16. आचार्य मीठालाल ओझा 17. आचार्य मुरारि लाल शर्मा 18. आचार्य पिडपर्ति सुब्रह्मण्यम शास्त्री 19. आचार्य पिडपर्ति कृष्णमूर्ति शास्त्री 20. आचार्य हनुमान शास्त्री 21. आचार्य मधुरकृष्णमूर्ति शास्त्री 22. आचार्य श्रीचन्द्र पाण्डेय 23. आचार्य श्रीव्रजकिशोर झा 24. आचार्य कल्याणदत्त शर्मा 25. आचार्य कृष्णचन्द्र द्विवेदी 26. आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय 27. आचार्य रामचन्द्र झा 28. आचार्य शुकदेव चतुर्वेदी 29. आचार्य शिवाकान्त झा 30. आचार्य उमाशंकर शुक्ल 31. आचार्य ओंकारनाथ चतुर्वेदी 32. आचार्य ह्रषीकेश उपाध्याय 33. आचार्य हीरालाल मिश्र 34. आचार्य रामपाल शर्मा 35. आचार्य नागेश उपाध्याय 36. आचार्य रामभरोसे मिश्र 37. आचार्य माताभीख शुक्ल 38. आचार्य दुर्गादत्त मिश्र 39. आचार्य राममूर्ति शुक्ल और 40. आचार्य के.बी.शर्मा 41. आचार्य सच्चिदानन्द मिश्र

इनके अतिरिक्त भी ज्योतिष शास्त्र के अनेकों विद्वान शास्त्र की रक्षा में अपना जीवन निरन्तर समर्पित किये हैं, और कर रहे हैं। सभी का नाम यहाँ उल्लिखित करना असंभव है। अत: प्रमुखता और स्व जानकारी के अनुसार ही उक्त विद्वानों के नाम यहाँ दिए गये हैं।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आर्यभट्ट का काल ..... है।
2. वृहत्संहिता के रचयिता ..... है।

3. ब्रह्मगुप्त का काल.....है।
4. सूर्यसिद्धान्त सूर्यांश पुरूष और ..... की संवाद रूपी ग्रन्थ है।

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेद किसी शास्त्र विशेष का ग्रन्थ नहीं है। अत: वहाँ किसी भी शास्त्र विशेष का सांगोपांग वर्णन एकत्र नहीं देखा जाता है। किन्तु प्रसंगवश सभी शास्त्रों का दिग्दर्शन अवश्य होता है। ज्योतिष तो वेदांग ही है। इसलिए इस का वर्णन स्वाभाविक है। इस प्रकार इस शास्त्र का प्रवर्त्तक तो वेद है। कालक्रम में इस शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय उन्हें मिला है और इतिहास में उल्लेख भी उनमें सर्वप्रमुख है। प्रवर्त्तक का अर्थ ऋषि एवं आचार्य वह होता है, जो परम्परा की रक्षा के लिए कार्य करता है। साथ ही उनमें नवीनपरक अनुसन्धान करने का कार्य भी वह करने के लिए तटस्थ रहता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्रवर्तक – प्रवर्तक का अर्थ है – ऋषि। ऋषि द्रष्टा होता है, जो अपने तपोबल से भावी घटनाओं को सरल रूप से देख लेता है।

आचार्य – आचार्य परम्परा का पोषक होता है। वह प्रचलित परम्परा की रक्षा अपने ज्ञान के आधार पर करने के साथ-साथ उसको सरल बनाने का कार्य करता है।

सिद्धान्त – सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:।

वेद – सर्वविद्या का मूल वेद है। चूँकि ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती है, इसीलिए वेद को अपौरूषेय भी कहा है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। इन्हीं को शास्त्र भी कहा जाता है।

स्कन्ध – विभाग।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ख 4.क 5. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. ४७६ ई. 2. वराहमिहिर 3. ५९८ ई0 4. दानवराज मय

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्ण दीक्षित

(ख) कश्यप संहिता

(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री।

(घ) नारद संहिता

(ड.) भारतीय फलित ज्योतिष – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों का उल्लेख कीजिये।
2. प्रवर्त्तक एवं आचार्य में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
3. ज्योतिष के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख कीजिये।
4. शास्त्रों में प्रवर्त्तक एवं आचार्यों की भूमिका पर निबन्ध लिखिये।

इकाई – 5 ज्योतिष शास्त्र का ऐतिहासिक विवेचन

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक विवेचन

5.3.1 प्राग्वैदिक काल

5.3.2 वैदिक काल

5.3.3 वेदांग काल

5.3.4 सिद्धान्त काल

5.3.5 आधुनिक काल

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्द

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सहायक पाठ्यसामग्री

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-501 के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों का अध्ययन कर लिया हैं। अब आप ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक पक्ष का अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति कहाँ से हुई? कब हुई? कालक्रम के आधार पर हम ज्योतिषशास्त्र को कैसे समझ सकते हैं? इन सभी प्रश्नों से जुड़े समाधानों का हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं।

आइए इस इकाई में कालक्रम के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक विवेचन का अध्ययन करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिषशास्त्र के आरम्भिक तथ्यों को समझ लेंगे।
- काल क्रम के आधार पर ज्योतिष शास्त्र के ऐतिहासिक पक्षों को जान लेंगे।
- प्राग्वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल पर्यन्त ज्योतिष की स्थितियों को समझने में समर्थ हो सकेगें।
- ऐतिहासिक विवेचना के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का बोध कर लेगें।

5.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक परिचय

किसी भी शास्त्र या विषय का सम्यक् अध्ययन करने के लिए उसका इतिहास जानना आवश्यक होता है; क्योंकि उस शास्त्र के इतिहास द्वारा तद्विषयक ज्ञान समझ में आ जाता है। ज्योतिषशास्त्र सृष्टि और प्रकृति के रहस्य को व्यक्त करने वाला है। मानव प्रकृति की पाठशाला में सर्वदा से इस शास्त्र का अध्ययन करता चला आ रहा है। गुरूपरम्परा से इस शास्त्र की अनवरतता लोक में प्रसिद्ध है, अत: इस शास्त्र के उद्भव स्थान और काल का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है। चाहे अन्य ज्ञानों की निर्झरिणी के आदि स्रोत का पता लगाना सम्भव हो, पर प्रकृति के अनन्यतम अंग इस शास्त्र का ओर-छोर ढूँढना मानव-शक्ति से परे की बात है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है जिस दिन से मानव ने होश संभाला, उसी दिन से उसने ज्योतिष के आवश्यक तत्वों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। भले ही वह इन तत्वों को अभिव्यक्त करने की योग्यता के

अभाव में दूसरों को न बता सका हो, पर उसका जीवन निर्वाह इन तत्वों के बिना हो नहीं सकता था; फलत: मानव- जीवन के विकास के साथ- साथ ज्योतिष का भी विकास हुआ।

काल वर्गीकरण की दृष्टि से इस शास्त्र के इतिहास को निम्न युगों में विभक्त किया जा सकता है : -

प्रागवैदिक काल - सृष्ट्यारम्भ काल से वैदिक काल के पूर्व तक का समय
ई.पू. १०००० वर्ष के पहले का समय (आधुनिक मतानुसारेण)

वैदिक काल – ई.पू. १०००१ से ५०० तक (ऋक् , याजुष, अथर्व ज्योतिष का काल)

वेदांग काल – महात्मा लगध का काल

आदिकाल – ई0 पू0 ५०१ ई. से ५०० ई. तक

सिद्धान्त काल (पूर्वमध्यकाल) – ५०१ ई0 से १००० तक

उत्तरमध्यकाल – १००१ ई0 से १६०० ई0 तक

आधुनिक काल – १६०१ ई. से वर्तमान समय तक

5.3.1 प्रागवैदिक काल –

ज्योतिषशास्त्र 'वेदांग' होने के कारण वेद की भाँति यह भी अपौरूषेयता को प्राप्त है। ऋषि हृदय में अवतरित होने के कारण इस शास्त की भी अपनी एक अलग महिमा है। सहस्रों वर्षों के तपोबल के आधार पर ऋषि अपनी दिव्य चक्षुओं से काल के विभिन्न स्वरूपों को देख व जान लेता था, तभी तो उसे 'त्रिकालज्ञ' की संज्ञा दी गयी। वह दैववशात् होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन अपने ज्योतिष रूपी गूढ़ ज्ञान से सहज ही कर लेता था। इसीलिए उसे 'दैवज्ञ' भी कहा गया।

वैदिक काल के पूर्व अर्थात् प्रागवैदिक काल में इस शास्त्र की स्थिति अपनी दिव्यता के साथ लोक में व्याप्त थी। मानव को वह कितनी मात्रा में सर्वसुलभता के साथ प्राप्त थी? इसका लिखित विवरण ज्योतिषशास्त्र के किसी ग्रन्थ में अप्राप्त है। शायद इसीलिए कुछेक आचार्यों ने अन्धकार काल की बात की है। किन्तु मेरा मानना है कि ज्योतिष अपने ज्ञान से अन्धकार को प्रकाश में बदल देता है, इसीलिए ज्योतिषशास्त्र का कोई भी कालखण्ड कथमपि अन्धकारकाल के रूप में नहीं हो सकता। हाँ उसे प्रागवैदिक काल के रूप में हम अवश्य जान सकते है।

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि ज्योतिषशास्त्र के उद्भव काल का ज्ञान मानव शक्तिगम्य नहीं है; क्योंकि सृष्टि के उत्पत्ति काल से जब इसका उद्भव माना जाता है तो उस काल का वर्णन मानवीय ज्ञान से कथमपि सम्भव नहीं है। अत: यह मानव सृष्टि के समान अनादि है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि एक कल्पकाल में ४३२०००००० वर्ष होते हैं, सृष्टि के प्रारम्भ होते ही सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में नियमित रूप से भ्रमण करने लगते हैं। सृष्टि में लिपि का प्रादुर्भव कब हुआ

अथवा वर्णों की उत्पत्ति सर्वप्रथम कहाँ से हुई? इन सभी प्रश्नों के उत्तर मानवीय सीमा के बाहर है। यदि सर्वविद्यामूलक वेद की बात करें अथवा पुराण या उपनिषदों के आधार पर भगवान शिव को समस्त विद्याओं का मूल स्रोत कहा जाता है। दुर्गासप्तशती के 'कीलक' पाठ में जैसा कि हमें प्राप्त होता है – ''विशुद्ध ज्ञान देहाय त्रिवेदी दिव्यचक्षुषे। श्रेय: प्राप्त निमित्ताय नम: सोमार्द्धधारिणे।।'' जिनका शरीर ही विशुद्ध ज्ञान है ऐसे शिव की बात की गई है। अत: तभी सृष्टि के आदि काव्य रामायण में भी शिव द्वारा कथा कहने की बात की गई है। समस्त विद्याओं को सर्वप्रथम शिव ने ही शक्ति को प्रदान किया तत्पश्चात् ऋषियों को। पुन: ऋषि परम्परा से विद्याओं की लोक में व्याप्ति हुई। ज्योतिषशास्त्र की भी उत्पत्ति उसी क्रम में ब्रह्मादि द्वारा नारद तथा वसिष्ठादि ऋषियों की परम्परा से चली आ रही है। काश्यप संहिता के अनुसार भगवान सूर्य को ज्योतिषशास्त्र का अधिपति बतलाया गया है।

मानवीय धरातल पर मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने पर अवगत होगा कि 'क्यों', और 'कैसे' ये दो जिज्ञासाएँ उसकी प्रधान हैं। वह प्रत्येक वस्तु के आदि कारण की खोज करता है और उसके सम्बन्ध में सभी अद्भुत बातों को जानने के लिए लालायित रहता है। जब तक उसकी यह ज्ञानपिपासा शान्त नहीं होती, उसे मन:शान्ति नहीं मिलती। फलत: आदि मानव के मस्तिष्क में भी यत्किंचित् विकास के अनन्तर ही समय, दिशा और स्थान जिनके बिना उसका काम चलना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव था; के सम्बन्ध में क्यों और कैसे ये प्रश्न अवश्य उत्पन्न हुए होंगे तथा इन प्रश्नों के उत्तर पाने की भी चेष्टा की होगी। यह निश्चित है कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का स्रोत समय, दिशा, और स्थान के बिना प्रवाहित नहीं हो सकता है। इसीलिए उक्त तीनों विषयों का ज्ञान ज्योतिष के द्वारा सम्पन्न होने पर ही अन्य विषयों का ज्ञान मानव को हुआ होगा।

भारतवर्ष की अपनी निजी विशेषता आध्यात्मिक ज्ञान की है और इसका सम्पादन योग-क्रिया द्वारा प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार 'महाकुण्डलिनी' नाम की शक्ति समस्त सृष्टि में परिव्याप्त रहती है और व्यक्ति में यही शक्ति कुण्डलिनी के रूप में व्यक्त होती है।

अनुभव भी यह बतलाता है कि मानव ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे प्रथम स्थान, दिक् और काल – इन तीन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की होगी। क्योंकि किसी से भी पूछा जाये कि अमुक वस्तु कहाँ स्थित है? तो वह यही उत्तर देगा कि अमुक दिशा में है। अमुक घटना कब घटेगा? तो वह यही कहेगा कि अमुक समय में। अभिप्राय यह है कि अमुक स्थान से इतना पूर्व, अमुक से इतना दक्षिण, इतने बजकर इतने मिनट पर अमुक कार्य हुआ, इतना बदला देने पर उस

कार्य-विषयक स्वाभाविक जिज्ञासा शान्त हो जाती है। ज्योतिष द्वारा उक्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करना ही साध्य माना गया है। इसलिए प्रागवैदिक काल में जब ज्योतिष के सिद्धान्त लिपिबद्ध किये जा रहे थे, इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। स्थान एवं कालबोधक शास्त्र होने के कारण इसे जीवन का अभिन्न अंग बतलाया गया है।

नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित 'भारतीय ज्योतिष' में ज्योतिषीय काल वर्गीकरण के अन्तर्गत उन्होंने अन्धकार युग की बात कही है, जो मेरी दृष्टि (इकाई लेखक) में सर्वथा अनुपयुक्त है, मैं इसका खण्डन करता हूँ। ज्योतिष शास्त्र का कोई भी कालखण्ड अन्धकारमय नहीं रहा, यह किसी की कपोल कल्पना ही हो सकती है। जिस शास्त्र का उद्भव सृष्ट्योत्पत्ति के साथ हुआ है, उसके अस्तित्व का कोई भी कालखण्ड अन्धकारमय नहीं हो सकता। ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ सम्प्रत्यपि अविच्छिन्न रूप से गतिमान है।

5.3.2 वैदिक काल –

वैदिक सनातन परम्परा में विदित है कि यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अत: इसे 'वेदांग' की संज्ञा दी गई है। वेद किसी एक विषय पर केन्द्रित रचना नहीं है। वेद सर्वविद्या का मूल है। विविध विषय और अनेक अर्थ को द्योतित करने वाली मन्त्र राशि वेदों में समाहित है। केवल ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन या किसी अन्य विषय का ग्रन्थ नहीं है - वेद। अत: वेदों में किसी भी विषय का तारतम्य बद्ध अध्ययन नहीं है। इसीलिए वेदों को उत्स, मूल या आदि तो कह सकते हैं, पर विषय नहीं। भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि वेद में निहित है। कोई भी विषय मान्य और भारतीय दृष्टि से संवलित तभी माना जायेगा जब उसकी जड़े वेदचतुष्टय में कहीं न कहीं समाहित हों। अत: ज्योतिष भी वेदों में बीजरूप में दिखलाई पड़ता है। इसी बीज विषय को 'वैदिक ज्योतिष' कहते है।

वैदिक काल में मानव ज्योतिष को भी धर्म मानता था, उस युग में व्यक्ति और समाज के समस्त कार्य एक ही नियम पर चलते थे, अत: धर्म, दर्शन और ज्योतिष – ये भेद साहित्य में प्रस्फुटित नहीं हुए थे तथा समस्त विषयों का साहित्य एक साथ ही रहता था।

कुछ आचार्यों का मत है कि उदयकाल के पूर्व आर्य लोग भारत में उत्तरी ध्रुव से आये थे और यहाँ बस जाने के पश्चात् उन्होंने वेद, वेदांग आदि साहित्य की रचना की। लेकिन विचारकरने पर अवगत होगा कि उस कालखण्ड में उत्तरी ध्रुव उस स्थान पर था, जिसे आज बिहार और उड़ीसा कहते हैं। वह भारत के बाहर नहीं था। अत: आर्य भारत के ही थे अथवा पूर्व समय में भारत के लोगों

को आर्य कहकर सम्बोधित किया जाता था। आर्यों ने उदयकाल में अपने वैदिक साहित्य को जन्म दिया। यद्यपि वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, द्वादशांश, प्रकीर्णक और उपनिषद् आदि धार्मिक रचनाएँ मानी जाती हैं, पर इनमें ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्प आदि विद्याओं की चर्चाएँ पर्याप्त मात्रा में हैं। वैदिक काल के साहित्य में मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह, ग्रहण, ग्रहकक्षा, नक्षत्र, विषुव, नक्षत्र- लग्न, दिन-रात का मान और उसकी वृद्धि-हानि आदि विषयों पर विचार ज्योतिष की दृष्टि से किया जाने लगा था। वेदों में प्रतिपादित ज्योतिष चर्चा की अपेक्षा शतपथ ब्राह्मण, वृहदारण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में विकसित रूप से उपलब्ध है। इन ग्रन्थों में ज्योतिष के सिद्धान्तों का व्यावहारिक और शास्त्रीय इन दोनों दृष्टिकोणों से प्रतिपादन किया है। ऋग्वेद के समय में दिन को केवल काम निकालने वाला समय के रूप में माना जाता था, पर ब्राह्मण और आरण्यकों के समय में उसका ज्योतिष की दृष्टि से विवेचन होने लग गया था। दिन की वृद्धि कैसे और कब होती है तथा वह कितना बड़ा होता है आदि बातों की शास्त्रीय मीमांसा होने लग गयी थी। वैदिक काल की ज्ञानराशि पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त भौमादि ५ ग्रह भी ज्योतिषविषयक साहित्य के विषय बन गये थे। इस युग में ज्योतिष के भेद-प्रभेद भी आविर्भूत नहीं हुए थे, केवल सामान्य ज्योतिष शब्द से इस शास्त्र के ग्रह-नक्षत्र के गणित और उनके फल गृहीत होते थे।

5.3.3 वेदांग ज्योतिष काल –

वेदांग ज्योतिष कहने से ज्योतिष के उस भाग का बोध होता है जो वैदिक ज्योतिष और मानव ज्योतिष से भिन्न है। वेदांग कहते ही, वेद के छ: अंगों का नाम सामने आ जाता है। ये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष। इन्हें 'षडंग' भी कहा जाता है। अंगी वेद है और अंग वेदांग है।

षड् वेदांगों में से चार वेदांग भाषा से सम्बन्धित हैं – व्याकरण, निरूक्त, शिक्षा और छन्द। इन चार वेदांगों से वेद का यथार्थ बोध होता है। कल्प के चार विभाग हैं। श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब। इनमें से केवल शुल्ब ही वैज्ञानिक शाखा का प्रतिनिधत्व करता है। षष्ठ अंग है -ज्योतिष। यह वेदांग पूर्णत: वैज्ञानिक, कालविधान कारक तथा वैदिक धारान्तर्गत भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है।

वेदांग ज्योतिष की रचना महात्मा लगध ने की थी। **महात्मा लगध को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने प्रथम बार ज्योतिषशास्त्र को 'अथ' से 'इति' पर्यन्त तक वर्ण्य विषय बनाया।**

अत्यन्त सरलता, सहजता और शुचिता के साथ उन्होंने स्वीकार किया कि इन मंत्रों को तपस्या या समाधि के समय हमने ईश्वरीय अवदान के रूप में नहीं पाया है, बल्कि ये समस्त विषय मेरी मनीषा की स्तरीय बौद्धिक उपलब्धियाँ हैं। ये 'स्वचिन्त्य-' हैं। अचिन्त्य और अव्यक्त का स्फूर्त अवतरण नहीं हैं। यदि आर्च ज्योतिष का सम्बन्ध 'दृष्टमंत्रवद्' होता तो उसके साथ विनियोग भी जुड़ा होता। स्पष्ट है कि यह महात्मा लगध की अपनी रचना है। ऋषिपद विश्व का श्रेष्ठतम पद है। ऋषित्व के आगे सब कुछ हेय है, क्योंकि यह अपरिमेय है। एक मंत्र का द्रष्टा ऋषि उतना ही पूज्य है जितना शताधिक मंत्रों का द्रष्टा है। ऋषि युग में लगध ने अपने को महात्मा कहा –

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।
इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।

काल को सिर झुका कर प्रणाम करके, सरस्वती का अभिवादन करके लगध महात्मा के कालज्ञान को कहने जा रहा हूँ।

इस प्रकार से मास, वर्ष, मुहूर्त्त, उदय, पर्वकाल, दिन, ऋतु, अयन एवं मासादि का व्याख्यान लगध ने किया। इन दोनों श्लोक में लगध का नाम आया है और ऊपर के श्लोक में तो महात्मा उपाधि के साथ आया है। इससे इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता को बल मिलता है कि यह महात्मा लगध की रचना है। इसकी भाषा और विषय से इस (आर्च ज्योतिष) की 'श्रुति मूलकता सिद्ध' होती है।

महात्मा लगध को लेकर दो प्रकार का अनुमान अंग्रेज इतिहासकारों ने खड़ा किया। साथ ही उनके अनुमान से लगध की वास्तविक ऐतिहासिक उपस्थिति को भ्रम या संदेह की दृष्टि से देखने का अवसर मिला। पहला अनुमान था – संस्कृत ग्रन्थों में अपने नाम को लिखने की परम्परा नहीं रही है। सम्भव है किसी अन्य लेखक ने 'लगध' नाम से आर्च ज्योतिष की रचना की हो। दूसरा अनुमान था – 'लगध' शब्द संस्कृत का नहीं है। इन दोनों अनुमानों को निरस्त करने का काम प्रायशः परवर्ती ज्योतिष इतिहासकारों ने किया है। यदि अपना नाम लिखने या ग्रन्थ में डालने की परम्परा नहीं होती तो मन्त्रों और सूक्तों के द्रष्टा ऋषियों का ज्ञान किसी को नहीं हो पाता। विनियोग में ऋषि का नाम अवश्य होता है। भारतीय परम्परा में अपना परिचय देने की परम्परा अपूर्व है। गोत्र, प्रवर, आचार्य के नामोल्लेख के साथ अपना परिचय दिया जाता है। कठिनाई तब आती है जब अंग्रेज इतिहासकार 'ननु न च' करके तथ्यों को झुठलाता है या संदेह के घेरे में डाल देता है। वेबर ने 'लगध' का नाम 'लाट' के रूप में प्रतिपादित कर उन्हें पाँचवीं शताब्दी का ठहराने का प्रयास किया है। ध्येय है वेबर

की मानसिकता वेदों और भारतीयों विद्याओं के प्रति अत्यन्त निम्नस्तरीय थी। कतिपय अंग्रेज इतिहासकारों ने लगध को 'लगड़' या 'लगढ़' माना है। 'होमगन्ध' और 'पुष्पगन्ध' की तरह 'लगध' नाम संस्कृत का है। 'र' अक्षर आगम में अग्निबीजक का वाचक है। इसी तरह 'ल' अक्षर पृथ्वी का वाचक है। फलत: जिसके शरीर से हवनाग्नि की सुगंधि निकलती हो उसे रगध (र गंध) और जिसके शरीर से मृत्तिका की सोंधी सुगंधि निकलती हो उसे लगध (ल गंध) कहते हैं।

वेदांगज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय –

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया हैं।

वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें वेदांग ज्योतिष में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है। एक सौर वर्ष ३६६ दिनों का माना गया है, इसलिए ५ सौर वर्षों में ३६६ × ५ = १८३० सावन दिन होते हैं। एक युग में ६२ चान्द्रमास और ६० सौर मास होते हैं इस प्रकार ५ वर्ष में २ अधिमास होते हैं। इन २ अधिमासों में ३० तिथियाँ होती है। युग में ६७ नाक्षत्रमास होते हैं। इसमें चन्द्रमा ६७ × २७ = १८०९ नक्षत्रों को पार करता है। युग का आरम्भ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनान्त से होता है, जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों धनिष्ठा नक्षत्र पर होते है और माघमास का आरम्भ होता है। जैसे –

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तप: शुक्लोऽयनंह्युदक्।।

अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर आकाश में होते हैं तभी युग का आदि माघ और उत्तरायण का आरम्भ होता हैं, जो शुक्लपक्ष का आदि और तपमास होता है।

वेदांग ज्योतिष में स्पष्ट है कि तिथि नक्षत्रों के मान केवल चन्द्रमा, सूर्य के मध्यम गतियों की गणना के आधार पर बनाये गये गणितीय नियमों के अनुसार हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों और तिथियों के अंशात्मक विभाग उस समय तक नहीं किए गये थे। क्योंकि ५ वर्ष के सावन दिनों की संख्या और तिथियों की संख्या का अन्तर करके उसमें पक्ष संख्या से भाग देकर पाक्षिक तिथियाँ

प्राप्त की गई हैं, और इसी प्रकार चन्द्रमा के नक्षत्र भोग दिनों में नक्षत्र संख्या से भाग देकर नक्षत्रों का मान उपलब्ध किया हुआ प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्रों के कोणीय मान का कोई निर्देश नहीं है।

अभ्यास प्रश्न – 1

1. निम्नलिखित में 'दैवज्ञ' किसकी संज्ञा है –
   क. देवता को जानने वाला ख. ज्योतिष शास्त्र वेत्ता ग. कालज्ञ घ. सभी
2. एक कल्प काल में कितने वर्ष होते है ?
   क. ४३२००० ख. ४३२०००० ग. ४३२००००० घ. ४३२०००००००
3. काश्यप संहिता के अनुसार ज्योतिष शास्त्र के अधिपति है।
   क. शिव ख. विष्णु ग. चन्द्र घ. सूर्य
4. यज्ञादि कर्म आश्रित है –
   क. अनुष्ठान पर ख. काल पर ग. कर्मकाण्ड पर घ. कोई नहीं
5. वेदांग ज्योतिष किसकी रचना है –
   क. लगध ख. भास्कर ग. गणेश घ. राम

वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का काल –

अब तक जितने स्वनामधन्य मनीषियों ने वेदों के काल का अनुमान लगाया है वह सारा का सारा अनुमान खण्डित होता नजर आ रहा है। उपग्रहों के द्वारा कृष्ण की द्वारकापुरी समुद्र में ढूँढ ली गयी है। सेतुबन्ध रामेश्वरम का अस्तित्व विज्ञान की नजरों में समा चुका है। अत: ५१०० वर्ष का काल तो महाभारत को ही समर्पित हो जायेगा। कोई ऐसा कारण भी नहीं है हम वेद काल या वेदांग काल को ईसा पूर्व १४०० वर्ष का मानें। अत: कालविभाजन की वे सारी मेड़ें स्वयं ध्वस्त होती चली जा रही हैं जिनसे सारी सृष्टि को ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के अंदर धकेलने का प्रयास किया गया था। यूरोपियन एकेडमी का चश्मा अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और स्वयं वहीं के वैज्ञानिकों ने बाइबिल की उस मान्यता को निरस्त कर दिया है जिसमें सृष्टि को मात्र छ: हजार वर्ष प्राचीन कहा गया है। यानी ईसा पूर्व का चार हजार वर्ष का समय और ईसा पश्चात् का दो हजार वर्ष का समय। प्रस्तुत शीर्षक में वेदांग या वेद का कालनिर्धारण करना शक्य नहीं है। ध्येय केवल इतना है कि अंग्रेजों द्वारा निर्धारित काल गणना का पुरातात्विक प्रमाणभूत मानदण्ड ईसा पूर्व ३२० वर्ष अन्य प्रमाणों के उपलब्ध हो जाने के कारण ध्वस्त हो चुका है। अब कालगणना का मानदण्ड महाभारत है।

महाभारत को मिथक या काल्पनिक ग्रन्थ कह कर पल्ला झाड़ने वाले क्रूर भाषावैज्ञानिक ही हो सकते हैं। महाभारत में विद्यमान ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का भी अन्तर स्पष्ट है।

श्रुति परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उसके जन्म का अनुमान लिपि परम्परा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अत: सर्वप्रथम काल गणना का मानदण्ड महाभारत पूर्व महाभारत पश्चात् निश्चित करना होगा। यदि काल गणना का मानदण्ड ए.डी. या बी.सी. होगा तो उससे बेहतर है कि हम संस्कृत और वैदिक वांगमय का इतिहास निर्धारित ही न करें। हमें कलियुगाब्द को ऐतिहासिक मानना ही होगा। इस दिशा में हमारे सनातन परमपरा के पास तत्कालीन राजाओं को सौ–सौ वर्षीय परम्परायें भी प्राप्त हैं। अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण प्रदत्त शाप कि महाभारत समाप्ति के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक तुम पृथ्वी पर विकल घूमते रहोगे यह सिद्ध करता है कि ईसामसीह से पूर्व का तीन हजार वर्ष का समय भारतीय मनीषियों की दृष्टि से फिसल नहीं सकता। हमारे पंचांगों में जो सृष्ट्यादि काल गणना है वह १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख ८५ हजार, एक सौ वर्ष से आगे बढ़ रही है। इसी का अंतिम चार अंक कल्यब्द है जो ५१०७ या निरन्तर एकोत्तर वर्ष अधिक है। इसी पूरी गणना से आज भी ग्रहगणित होता है।

वेदांगज्योतिष के गणितीय अवयव –

५ वर्ष	= १ युग
५ वर्ष	= ५ सूर्य भगण
५ वर्ष	= ६० सौर मास
५ वर्ष	= ६२ चान्द्र मास
५ वर्ष (६२ चान्द्र मास +५)	= ६७ चन्द्र भगण
५ वर्ष	= १८०० सौर दिन
५ वर्ष ६२ चान्द्रमास	= १८६०चान्द्र दिन
५ वर्ष	= १८३०सावन दिन
५ वर्ष (१८३०सावन दिन + ५)	= १८३७भभ्रम (नक्षत्रोदय)
५ वर्ष में उत्पन्न क्षयदिन (१८६०-१८३०) = (युगक्षयाह)	
१ सौर वर्ष में कुल सावन दिन	= ३६६ दिन
१ सौर वर्ष में कुल सौर दिन	= ३६० दिन
१ सौर वर्ष में कुल चान्द्र दिन	= ३७२
१ सौर वर्ष में कुल नक्षत्रोदय	= ३६७

१ सौर वर्ष में कुल अयन संख्या = २

१ अयन में कुल सावन दिन संख्या = १८३

१ अयन में कुल सौर दिन संख्या = १८०

१ सौर युग (५ सौर वर्ष में) चन्द्रनक्षत्र संख्या ६७ × २७ नक्षत्र = १८०९ (चन्द्रभुक्तनक्षत्र)

१ युग = १२० सौर पर्व = १२४ चान्द्रपर्व।

१ युग में उत्पन्न ४ अधिपर्व

६० सौरपर्व में उत्पन्न २ अधिपर्व

१ नक्षत्र दिन = १ सावन दिन + ७ कला

१ युग में सूर्य नक्षत्र संख्या ५ × २७ = १३५

१ नक्षत्र भोग में सूर्य १३ दिन १३ घंटा २० मिनट लेता है।

आर्च ज्योतिष –

वेदांग ज्योतिष की प्रथम और महत्वपूर्ण रचना है – 'आर्चज्योतिष'। आर्चज्यौतिषम् विश्व की पहली गणितपुस्तक है। ऋग्वेद का 'वेदांगज्यौतिषम्' है 'आर्च ज्यौतिषम्'। इसमें कुल ३६ मन्त्रात्मक श्लोक उपलब्ध हैं। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना के शिल्पी हैं महात्मा लगध। यहीं से प्रारम्भ होता है वेदाङ्ग काल। अनुक्रम पूर्वक विषय का प्रतिपादन यहीं से आरम्भ हुआ है। इस ग्रन्थ को परम्परा प्राप्त अनुश्रवण से आर्चज्योतिष कहा गया है तथा इस ग्रन्थ से यह बात स्पष्ट होती है कि वेद यज्ञ के प्रतिपादन हेतु प्रवृत्त हैं, यज्ञ कालाश्रित हैं, काल ज्योतिषशास्त्र से विधान को प्राप्त करता है ज्योतिष जानने वाला ही यज्ञ को समझता है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता:।
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।

आर्च ज्योतिष का यह उपसंहार श्लोक है। देखने में यह प्रयोजन परक श्लोक लगता है, पर रचनाकार ने इस मंत्र श्लोक से ग्रन्थ का समापन किया है। आर्चज्योतिष का उपसंहार ज्योतिष के ज्ञान और यज्ञ के संधान से हुआ है – 'यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्।' यह प्रयोजन परक यज्ञ ही सिद्ध करता है कि आर्चज्योतिष का प्रतिपाद्य पूर्णत: यज्ञ है।

प्राचीनकाल में किसी भी विषय का शास्त्रत्व सिद्ध होना उसके लिए प्रतिष्ठा का द्योतक होता था। इसीलिए ज्योतिष को कालविधान शास्त्र कहा गया ज्योतिर्विद्या नहीं। आज जैसे प्रतिष्ठा का द्योतक शब्द विज्ञान बना हुआ है उसी तरह से पहले 'शास्त्र' शब्द था। आज लोग अपने विषय की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए उसे विज्ञान से जोड़ने हैं जैसे – गृहविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान या फिर पोलिटिकल साइंसेज आदि। खिचड़ी पकाइये पर विज्ञान कहकर, पोलिटिकल साइंस कह कर। ज्योतिषशास्त्र को ज्योतिर्विज्ञान नाम से प्रचलित करने के पीछे युगधर्म और युग मानसिकता झलकती है। ज्योतिषशास्त्र से श्रेष्ठ कोई दूसरा शब्द इस अनुशासन के लिए अनुकूल हो ही नहीं सकता। विज्ञान केवल प्रतयक्ष या यन्त्र दृष्ट पदार्थों का ज्ञान प्रदान करता है। ज्योतिष शास्त्र भूत –वर्तमान- भविष्य तीनों को प्रस्फुटित करता है। इसीलिए वेदांग ज्योतिष का उपसंहार है 'यज्ञ'। बात यज्ञ पर आकर समाप्त हुई है। इसी प्रवृत्ति वेदांगकाल को वेदकाल का तत्काल अनुवर्ती काल या आसन्न काल मानना पड़ा हैं। आर्च ज्योतिष का महत्वपूर्ण श्लोक है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्।।

यही श्लोक याजुषज्योतिष के चौथे क्रम में वर्णित है और वहाँ 'ज्योतिषं' की जगह 'गणितं' पाठ भेद कर दिया गया है। वस्तुत: यहाँ 'ज्योतिषं' पाठ ही उपयुक्त था 'गणितं' नहीं। इसमें दो कारण हैं – आर्चज्योतिष पूर्ववर्ती है याजुष परवर्ती। अत: गणितं वैकल्पिक है। मूल पाठ 'ज्योतिषं' है। दूसरा कारण है – वेदांगता और शास्त्रत्व ज्योतिष को प्राप्त है केवल गणित को नहीं। तद् वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् कहते ही ज्योतिष से होरा और संहिता आदि अन्य शाखाओं का व्यावर्तन हो जाता है। ज्योतिष में समाविष्ट है गणित और 'शास्त्रत्व' ज्योतिष का है। फलत: पं0 सुधाकर द्विवेदी जी का यह कहना कि 'अत्र गणितं' स्थाने 'ज्योतिषम्' इति पाठो न विशेषार्थप्रद इति' उचित नहीं है। आचार्य श्री विस्मृत हो गये थे कि ज्योतिषं के स्थान पर गणितं आया है। पूर्ववर्ती है 'आर्च' परवर्ती है 'याजुष'। आचार्य सुधाकर द्विवेदी ने याजुष ज्योतिष का भाष्य पहले लिखा और 'आर्चज्योतिष' का बाद में। इसीलिए इस विषय की गंभीरता पर उनका ध्यान नहीं गया।

5.3.4 सिद्धान्त काल

सिद्धान्त काल में ज्योतिषशास्त्र उन्नति की चरम सीमा पर था। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि जैसे अनेक धुरन्धर ज्योतिर्विद हुए, जिन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा अनेक नवीन विषयों का समावेश किया। इस युग के प्रारम्भिक आचार्य वराहमिहिर या वराह हैं, जिन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तों का पंचसिद्धान्तिका

में संग्रह किया। ग्रहगणित के क्षेत्र में सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण इन भेदों का प्रचार भी होने लगा था। सिद्धान्तगणित में कल्पादि से, तन्त्र में युगादि से और करण शकाब्द पर से अहर्गण बनाकर ग्रहादि का आनयन किया जाता है। सिद्धान्त में जीवा और चाप के गणित द्वारा ग्रहों का फल लाकर आनीत मध्यमग्रह में संस्कार कर देते हैं तथा भौमादि ग्रहों का मन्द और शीघ्रफल लाकर मन्दस्पष्ट और स्पष्ट मान सिद्ध करते है।

ज्योतिषशास्त्र के साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ है। मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आलोचनात्मक ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि के सिद्धान्तों की आलोचना की और आकाश निरीक्षण द्वारा ग्रहमान की स्थूलता ज्ञात कर उसे दूर करने के लिए बीजसंस्कार की व्यवस्था बतलायी। ईसवी सन् की १२ वीं सदी में गोल विषय के गणित का प्रचार बहुत हुआ था। उत्तरमध्यकाल की प्रमुख विशेषता ग्रहगणित के सभी अंगों के संशोधन की है। लम्बन, नति, आयनबलन, आक्षबलन, आयनदृक्कर्म, आक्षदृक्कर्म, भूभाबिम्ब साधन, ग्रहों के स्पष्टीकरण के विभिन्न गणित और तिथ्यादि के साधन में विभिन्न प्रकार के संस्कार किये गये, जिससे गणित द्वारा साधित ग्रहों का मिलान आकाश-निरीक्षण द्वारा प्राप्त ग्रहों से हो सके।

इस युग की एक अन्य विशेषता यन्त्र निर्माण की भी है। भास्कराचार्य और महेन्द्रसूरि ने अनेक यन्त्रों के निर्माण की विधि और यन्त्रों द्वारा ग्रहवेध की प्रणाली का निरूपण सुन्दर ढंग से किया है। यद्यपि इस काल के प्रारम्भ में ग्रहगणित का बहुत विकास हुआ, अनेक करण ग्रन्थ तथा सारणियाँ लिखी गयीं, पर ई0 सन् की १५ वीं शती से ही ग्रहवेध की परिपाटी का ह्रास होने लग गया था। यों तो प्राचीन ग्रन्थों को स्पष्ट करने और उनके रहस्यों को समझाने के लिए इस युग में अनेक टीकाएँ और भाष्य लिखे गए, पर आकाश–निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से मौलिक साहित्य का निर्माण न हो सका। ग्रहलाघव, करणकुतूहल और मकरन्द जैसे सुन्दर करण ग्रन्थों का निर्मित होना भी इस युग के लिए कम गौरव की बात नहीं थी।

फलित ज्योतिष में जातक, मुहूर्त, सामुद्रिक, रमल और प्रश्न इन अंगों के साहित्य का निर्माण भी इस काल में कम नहीं हुआ है। मुस्लिम संस्कृति के अति निकट सम्पर्क के कारण रमल और ताजिक इन अंगों का तो नया जन्म माना जाता है। ताजिक शब्द का अर्थ ही अरब देश से प्राप्त शास्त्र है। इस युग में इस विषय पर लगभग दो दर्जन ग्रन्थ लिखे गये । इस शास्त्र में किसी व्यक्ति के नवीन वर्ष और मास में प्रवेश करने की ग्रहस्थिति पर से उसके समस्त वर्ष और मास का फल बताया जाता है। बलभद्रकृत ताजिक ग्रन्थ में कहा गया है :-

यवनाचार्येण पारसीकभाषायां प्रणीतं ज्योति:शास्त्रैकदेशरूपं वार्षिकादिनानाविधफलादेशफलकशास्त्रं ताजिकफलवाच्यं तदनन्तरभूतै: समरसिंहादिभि: ब्राह्मणै: तदेवशास्त्रं संस्कृतशब्दोपनिबद्धं ताजिकशब्दवाच्यम्। अतएव तैस्ता एव इक्कबालादयो यावत्य: संज्ञा उपनिबद्धा:।।

अर्थात् यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अंगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करनेवाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। इसके पश्चात् समरसिंह आदि विद्वानों ने संस्कृत भाषा में इस शास्त्र की रचना की और इक्कवाल, इन्दुवार, इशराफ आदि यवनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित योगों की संज्ञाएँ यथावत् रखीं।

इसी कालखण्ड में रमल शास्त्र, मुहूर्त्त शास्त्र एवं शकुनशास्त्र का भी उत्तरोत्तर विकास हुआ। आइए अब उनके बारे में भी चर्चा करते है।

रमल – रमल का प्रचार विदेशियों के संसर्ग से भारत में हुआ है। ईसवी सन् ११ वीं एवं १२ वीं शती की कुछ फारसी भाषा में रची गयी रमल की मौलिक पुस्तकें खुदाबख्शखाँ लाइब्रेरी पटना में मौजूद हैं। इन पुस्तकों में कर्ताओं के नाम नहीं हैं। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती है। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए कहा गया है कि – **'वेदतत्वोपरिकृतं रम्लशास्त्रं च सूरिभि:। तेषां भेदा: षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते।'**

अर्थात् अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्वों पर विद्वानों ने रमलशास्त्र बनाया है एवं इन चार तत्वों के सोलह भेद कहे हैं, अत: रमल के पाशे में १६ शकलें बतायी गयी है।

किंवदन्ती है कि बहलोद लोदी के साथ भी एक अच्छा रमलशास्त्र का वेत्ता रहता था, यह मूक प्रश्नों का उत्तर देने में सिद्धहस्त बताया गया है। रमलनवरत्न के मंगलाचरण में पूर्व के रमलशास्त्रियों को नमस्कार किया गया है: -

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधै:। उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम्।।

अर्थात् प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार करके परमसुख नामक ग्रन्थकर्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र में से सुन्दर नवरत्न को निकाला है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७ वीं शती है। अत: यह स्वयं सिद्ध है कि उत्तरमध्यकाल में रमलशास्त्र के अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

मुहूर्त्त –

यदि देखा जाय तो उदयकाल में ही मुहूर्त्त सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में संहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थीं, पर उत्तरमध्यकाल में इस अंग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनों की संख्या में हुई हैं। शक संवत् १४२० में

नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्त्ततत्व, शक् संवत् १४१३ में नारायण कृत मुहूर्त मार्तण्ड, शक् संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्त्त चिन्तामणि, शक् संवत् १५४९ में विट्ठल दीक्षित कृत् मुहूर्तकल्पद्रुम आदि मुहूर्त्त सम्बन्धी रचनाएँ हुई हैं। इस युग में मानव के भी आवश्यक कार्यों के लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

शकुनशास्त्र –

इसका विकास भी स्वतन्त्र रूप से इस युग में अधिक हुआ है। वि0सं0 १२३२ में अह्निपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपतिचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से स्वरविज्ञान द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने वाले शुभाशुभ शकुनों का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेना के पुत्र बल्लालसेन ने श.सं. १०९२ में अद्भुतसागर नाम का एक संग्रह ग्रन्थ रचा है, जिसमें अपने समय के पूर्ववर्ती ज्यातिर्विदों की संहिता सम्बन्धी रचनाओं का संग्रह किया है। कई जैन मुनियों ने शकुन के उपर वृहद् परिमाण में रचनायें लिखी हैं। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्हीं तत्वों की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी है।

इस काल में भारतीय ज्योतिष ने अनेक उत्थानों और पतनों को देखा है। विदेशियों के सम्पर्क से होनेवाले संशोधनों को अपने में पचाया है और प्राचीन भारतीय ज्योतिष की गणित-विषयक स्थूलताओं को दूर कर सूक्ष्मता का प्रचार किया है।

यदि संक्षेप में उत्तरमध्यकाल के ज्योतिष साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यही कहा जा सकता है कि इस काल में गणित ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष का साहित्य अधिक फला-फूला है। गणित ज्योतिष में भास्कर के समान अन्य दूसरा विद्वान नहीं हुआ, जिससे विपुल परिमाण में इस विषय की सुन्दर रचनाएँ नहीं हो सकी। इस काल में **भास्कराचार्य, दुर्गदेव, उदयप्रभदेव, मल्लिषेण, राजादित्य, बल्लालसेन, पद्मप्रभ सूरि, नरचन्द्र उपाध्याय, अट्टकवि या अर्हद्दास, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, गणेश, ढुण्ढिराज,नीलकण्ठ, रामदैवज्ञ, मल्लारि, नारायण तथा रंगनाथ** आदि जैसे अनेकों विद्वान हुए जिन्होंने अपनी अपूर्व कृतियों से भारतीय ज्योतिष शास्त्र को और पुष्पवित तथा पल्लवित करने में अपना योगदान दिया।

आधुनिक काल –

आधुनिक काल के आरम्भ में मुस्लिम संस्कृति के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार भी भारत में हुआ। यद्यपि उत्तरमध्यकाल में ही ज्योतिषियों ने आकाशावलोकन त्यागकर पुस्तकों का पल्ला पकड़ लिया था और पुस्तकीय ज्ञान ही ज्योतिष माना जाने लगा था। सत्य तो यह है कि भास्कराचार्य के पश्चात् मुस्लिम राज्यों के कारण हिन्दू-धर्म, सम्पत्ति, साहित्य और ज्योतिष आदि विषयों की उन्नति पर पहाड़ गिरे जिससे उक्त विषयों का विकास रूक गया। कुछ धर्मान्ध साम्प्रदायिक पक्षपाती मुस्लिम बादशाहों ने सम्प्रदाय के मद में चूर होकर भारतीय ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं किया, तथापि उसकी धारा शाश्वत रूप में गतिमान है। विद्वानों को राजाश्रय न मिलने से ज्योतिष के प्रसार और विकास में कुछ कम बाधाएँ नहीं आयी। नवीन संशोधन और परिवर्द्धन तो अलग की बात है, पुरातन ज्योतिष ज्ञान-भण्डार का संरक्षण भी कठिन हो गया। यद्यपि कुछ हिन्दू, मुस्लिम विद्वानों ने इस युग में फलित ग्रन्थों की रचनाएँ कीं, लेकिन आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से वास्तविक ज्योतिष तत्वों का विकास नहीं हो सका। शकुन, प्रश्न, मुहूर्त्त, जन्मपत्र एवं वर्षपत्र के साहित्य की अवश्य वृद्धि हुई है। कमलाकर भट्ट ने सूर्यसिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सिद्धान्ततत्वविवेक' नामक गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस अर्वाचीन काल के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों पर टीका- टिप्पणी बहुत लिखे गये।

१७८० में आमेराधिपति महाराज जयसिंह का ध्यान ज्योतिष की ओर विशेष आकृष्ट हुआ और उन्होंने काशी, जयपुर एवं दिल्ली में वेधशालाएँ बनवायीं, जिनमें पत्थरों की ऊँची और विशाल दीवारों के रूप में बड़े-बड़े यन्त्र बनवाये। स्वयं महाराज जयसिंह इस विद्या के प्रेमी थे, इन्होंने यूरोप की प्रचलित तारासूचियों में कई त्रुटियाँ बताई तथा भारतीय ज्योतिष के आधार पर नवीन सारणियाँ तैयार करायीं।

सामन्तचन्द्रशेखर ने अपने अद्वितीय बुद्धिकौशल द्वारा ग्रहवेध कर प्राचीन गणित-ज्योतिष के ग्रन्थों में संशोधन किया तथा अपने सिद्धान्तों द्वारा ग्रहों की गतियों के विभिन्न प्रकार बतलाये। इनके द्वारा रचित 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इधर अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार हो गया। इस भाषा के प्रचार के साथ-साथ अंग्रेजी आधुनिक भूगोल और गणितविषयक विभिन्न ग्रन्थों का पठन –पाठन की प्रथा भी प्रचलित हुई। सन् १८५७ के पश्चात् तो आधुनिक नवीन आविष्कृत विज्ञानों का प्रभाव भारत के उपर विशेष रूप से पड़ा है। फलत: अंग्रेजी भाषा के जानकार संस्कृत के विद्वानों ने इस

भाषा के नवीन गणित ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में कर ज्योतिष की श्रीवृद्धि की है। बापूदेव शास्त्री और पं0 सुधाकर द्विवेदी ने इस और विशेष प्रयत्न किया है। आप महानुभावों के प्रयास के फलस्वरूप ही रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति के ग्रन्थों से आज का ज्योतिष धनी कहा जा सकेगा। केतक नामक विद्वान ने केतकीग्रहगणित की रचना अंग्रेजी ग्रह-गणित और भारतीय गणित सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर की है। दीर्घवृत्त, परिवलय, अतिपरवलय, इत्यादि के गणित का विकास इस नवीन सभ्यता के सम्पर्क की मुख्य देन माना जाता है।

पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, सौर-चक्र, बुध, शुक्र, मंगल, अवान्तर ग्रह, वृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून, नभस्तूप, आकाशगंगा और उल्का आदि का वैज्ञानिक विवेचन पश्चिमीय ज्योतिष के सम्पर्क से इधर चार दशकों के बीच में विशेष रूप से हुआ है। डॉ0 गोरखप्रसाद ने आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर इस विषय की एक विशालकाय सौरपरिवार नाम की पुस्तक लिखी है जिससे सौर जगत् के सम्बन्ध में अनेक नवीन बातों का पता लगता है। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने ज्योतिर्विनोद नामक पुस्तक में कापर्निकस, जिओईनो, गैलेलियो और केप्लर आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों के अनुसार ग्रह, उपग्रह और अवान्तर ग्रहों का स्वरूप बतलाया है। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य सिद्धान्त का आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर विज्ञानभाष्य लिखा है, जिससे संस्कृतज्ञ ज्योतिष के विद्वानों का बहुत उपकार हुआ ह। अभिप्राय यह है कि आधुनिक युग में पाश्चात्य ज्योतिष के सम्पर्क से गणित ज्योतिष के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ हुआ है। यदि भारतीय ज्योतिषी आकाश-निरीक्षण को अपनाकर नवीन ज्योतिष के साथ तुलना करें तो पूर्वमध्यकाल से चली आयी ग्रहगणित की सारणियों की स्थूलता दूर हो जायेगी और भारतीय ज्योतिष की महत्ता समाज के समक्ष और सुदृढ़ रूप में स्थापित हो सकेगा।

अर्वाचीन काल में मुनीश्वर, दिवाकर, कमलाकर भट्ट, नित्यानन्द, महिमोदय, मेघविजयगणि, उभयकुशल, लब्धिचन्द्रमणि, बाघजी मुनि, यशस्वतसागर, जगन्नाथ सम्राट, बापूदेव शास्त्री, नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, सुधाकर द्विवेदी, पं0 रामयत्न ओझा, पं0 रामव्यास पाण्डेय, पं0 अवधबिहारी त्रिपाठी, पं0 मीठालाल ओझा, पं0 सीताराम झा, आचार्य राजमोहन उपाध्याय, आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, पं0 हीरालाल मिश्र, आचार्य कल्याण दत्त शर्मा, आचार्य शुकदेव चतुर्वेदी, आचार्य रामचन्द्र झा, शिवकान्त झा, आचार्य सच्चिदानन्द मिश्र आदि अनेकों ऐसे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान हुए हैं और हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इस शास्त्र की उपासना में लगा दी। इन्होंने अपनी-अपनी कृतियों से इस शास्त्र की रक्षा के साथ-साथ इनको पुष्पवित और पल्लवित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और दे रहे हैं। साथ ही इनके अध्येताओं को

नवीन उर्जा प्रदान करने के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र में नित्य नवीन शोध करने के लिए प्रेरित भी किया।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. वेदांग ज्योतिष के अनुसार ५ वर्ष बराबर ..... होता है।
2. एक सौर वर्ष ..... दिनों का होता है।
3. 'र' अक्षर आगम में ..... का वाचक है।
4. जिसके शरीर से मृत्तिका की सोंधी सुंगधि निकलती हो उसे ..... कहते है।
5. आचार्य नरपति द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम ..... है।

5.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किसी भी शास्त्र या विषय का सम्यक् अध्ययन करने के लिए उसका इतिहास जानना आवश्यक होता है; क्योंकि उस शास्त्र के इतिहास द्वारा तद्विषयक रहस्य समझ में आ जाता है। ज्योतिषशास्त्र सृष्टि और प्रकृति के रहस्य को व्यक्त करने वाला है। मानव प्रकृति की पाठशाला में सर्वदा से इस शास्त्र का अध्ययन करता चला आ रहा है। गुरूपरम्परा से इस शास्त्र की अनवरतता लोक में प्रसिद्ध है, अत: इस शास्त्र के उद्भव स्थान और काल का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है। चाहे अन्य ज्ञानों की निर्झरिणी के आदि स्रोत का पता लगाना सम्भव हो, पर प्रकृति के अनन्यतम अंग इस शास्त्र का ओर-छोर ढूँढना मानव-शक्ति से परे की बात है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है जिस दिन से मानव ने होश संभाला, उसी दिन से उसने ज्योतिष के आवश्यक तत्वों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। भले ही वह इन तत्वों को अभिव्यक्त करने की योग्यता के अभाव में दूसरों को न बता सका हो, पर उसका जीवन निर्वाह इन तत्वों के बिना हो नहीं सकता था; फलत: मानव- जीवन के विकास के साथ- साथ ज्योतिष का भी विकास हुआ।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

इतिहास – व्यतीत हो चुकी अथवा घटित घटनाओं से सम्बन्धित कहानी। सामान्यतया जो व्यतीत हो चुकी हो, उसे इतिहास कहते है। किसी विषय की समग्रता का बोध कराने वाला तथ्य।

दैवज्ञ – दैववशात् होने वाली घटनाओं को जानने वाला अथवा काल को जानने वाला।

कल्प – १००० महायुग के बराबर

वेदांग ज्योतिष – महात्मा लगध की रचना।

लगध – जिसके शरीर से मृत्तिका की सोंधी सुंगधि निकलती हो, उसे लगध कहते है।

मुहूर्त्त – मुह धातु में उरट प्रत्यय लगने से मुहूर्त्त शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में षड् वेदांग कहे गये है। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. घ 2. घ 3. घ 4. ख 5. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. १ युग 2. ३६६ 3. अग्निबीजक 4. लगध 5. नरपतिजयचर्या

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित

(ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध

(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री

(घ) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – आचार्य भास्कराचार्य

(ड.) ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की परिभाषा लिखते हुये विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ज्योतिष शास्त्र की ऐतिहासिक विवेचना कीजिये।
3. ज्योतिष के सिद्धान्त काल पर टिप्पणी लिखिये।
4. इस इकाई के अध्ययन के आधार पर अपने शब्दों में ज्योतिषशास्त्र पर निबन्ध लिखिये।
5. ज्योतिष की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

खण्ड – 2
ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख अंग

इकाई – 1 त्रि-पञ्च-बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष विवेचन

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ त्रि स्कन्ध ज्योतिष
१.४ पंच स्कन्ध ज्योतिष
१.५ बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष
१.६ सारांश
१.७ पारिभाषिक शब्दावली
१.८ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
१.९ सहायक पाठ्यसामग्री
१.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
१.११ निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – त्रि-पंच-बहुस्कन्धात्मक विवेचन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष शास्त्र का परिचय, इतिहास आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इसी क्रम में उसके स्कन्धों का अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, इसके कई स्कन्ध है। इसीलिए बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष की बात कही गई है। यदि हम ज्योतिषशास्त्र को कल्पवृक्ष के रूप में जानें, तो उस वृक्ष की कई शाखायें है। शाखायें ही स्कन्ध रूप में व्याप्त है।

आइए अब हम प्रधान रूप से और विस्तृत रूप से ज्योतिष के स्कन्धों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते है।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- ज्योतिष शास्त्र के विविध स्कन्धों को समझ लेंगे।
- प्रधान स्कन्धों को समझ सकेगें।
- बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष को समझा सकेगें।
- त्रि-पंच- बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष का विवेचन कर सकेंगे।

१.३ त्रि-स्कन्ध ज्योतिष

ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही अपने अस्तित्व को लेकर प्रकट हुआ था। अत: उसका आरम्भ ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही हुआ है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। कालान्तर में उसके रूपों में परिवर्तन होता चला गया। इस शास्त्र के अनेकों प्रवर्त्तक हुए, जिनमें ब्रह्मा जी से लेकर शौनकादि पर्यन्त विविध नामों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषशास्त्र अपने विविध स्कन्धों के साथ सृष्टि में कल्पवृक्ष की भाँति व्याप्त होकर युग-युगान्तर से लोकोपकारी रहा है। 'त्रि' शब्द का अर्थ तीन (3) होता है, जो संख्यावाची है। प्रधानता के दृष्टिकोण से ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध हुए –

१. सिद्धान्त या गणित २. होरा या फलित 3. संहिता

इन्हीं तीनों स्कन्धों को 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है। इसका विस्तृत विश्लेषण आगे

की इकाईयों में किया जायेगा। यहाँ सामान्य रूप से आप इन्हें समझ लिजिये।

१. सिद्धान्त या गणित – ज्योतिष के प्रमुख स्कन्धों में यह पहला स्कन्ध है, जिसमें काल की सूक्ष्मतम इकाई 'त्रुटि' से लेकर प्रलय काल पर्यन्त काल-गणना, सौर-चान्द्रमासों का प्रतिपादन, ग्रहगतियों का निरूपण, व्यक्ताव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविध प्रश्नोत्तर विधि, ग्रह-नक्षत्र की स्थिति, नाना प्रकार के तुरीय, नलिका इत्यादि यन्त्रों की निर्माण विधि, दिक् –देश-काल ज्ञान के अनन्यतम उपयोगी अंग, अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या,कुज्या, तद्धृति, समशंकु इत्यादि का आनयन किया जाता है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने इसकी परिभाषा बताते हुए कहा है-

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादियत्रोच्यते।
सिद्धान्त स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धस्तृतीयोऽपरः।।

इसके अतिरिक्त सामान्यतया सिद्धान्त को हम इस रूप में भी जानते है कि - सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:। अर्थात् अन्त में जाकर जो सिद्ध हो जाये, उसका नाम सिद्धान्त है। गण्यते संख्यायते तद् गणितम्। यह गणित की परिभाषा है। प्राचीनकाल में इसकी परिभाषा केवल सिद्धान्त गणित के रूप में मानी जाती थी। आदिकाल में अंकगणित द्वारा ही अहर्गण मान साधित कर ग्रहों का आनयन करना इस शास्त्र का प्रधान प्रतिपाद्य विषय था। पूर्वमध्यकाल में इसकी यह परिभाषा ज्यों की त्यों अवस्थित रही। उत्तरमध्यकाल में इसने अनेक पहलुओं के पल्लों को पकड़ा और इस युग के प्रारम्भ से वासनात्मक होती हुयी भी व्यक्त गणित को अपनाती रही, इसलिए इस काल में गणित के सिद्धान्त, तन्त्र व करण तीन भेद प्रकट हुए।

जिसमें सृष्ट्यादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रह सिद्ध किये जायें वह 'सिद्धान्त'; जिसमें युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रहगणित किया जाये वह 'तन्त्र' और जिसमें कल्पित इष्ट वर्ष का युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन का अहर्गण लाकर ग्रहानयन किया जाये उसे 'करण' कहते है।

२. होरा या फलित – प्रमुख स्कन्धों के क्रम में यह दूसरा स्कन्ध है। यह पूर्णत: सिद्धान्त या गणित ज्योतिष पर आधारित है। गणित के द्वारा जब हम ग्रहों को सिद्ध कर लेते हैं,

तब उसी आधार पर मानव जीवन के उपर उनका (ग्रहों का) पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण जिस स्कन्ध में हम करते हैं, उसी का नाम 'होरा या फलित' ज्योतिष है। इसका दूसरा नाम जातकशास्त्र है। इसकी उत्पत्ति अहोरात्र शब्द से है। आदि शब्द 'अ' और अन्तिम शब्द 'त्र' का लोप कर देने से होरा शब्द बनता है। होराशास्त्र मानवजीवन का पथप्रदर्शक है। जन्मकुण्डली के आधार पर द्वादश भावों के शुभाशुभ फल का विवेचन करना होराशास्त्र का प्रधान विषय है। जैसा कि आचार्य भट्टोत्पल ने कहा है – **'प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चियते सा होरा'।**

३. संहिता – प्रमुख स्कन्धों में यह तीसरा है। इसमें समष्टिपरक फलादेश आदि कर्त्तव्य किये जाते हैं। इसमें भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, गृहोपकरण, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, वास्तु, दकार्गल, समर्घ- महर्घ, प्राकृतिक आपदा, वृष्टि, जलाशय निर्माण, ग्रहों के उदयास्त का फल, ग्रहचार आदि इत्यादि समस्त प्रकल्प इसी स्कन्ध के अन्तर्गत आते हैं। ऐसा शास्त्र जो जन सामान्य के हितकारक अथवा लोकहितपरक विषयों का सम्यक्तया प्रतिपादन करता हो, उसे संहिता कहा जाता है। व्याकरणदृष्ट्या 'संहित' शब्द में टाप प्रत्यय करने पर 'संहिता' शब्द की निष्पत्ति होती है।

उपर्युक्त ये तीनों स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख शाखायें हैं, जिनका ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं को होना परमावश्यक है। आइये अब पंच-स्कन्ध ज्योतिष को जानते है।

१.४ पंच स्कन्धात्मक ज्योतिष

त्रिस्कन्ध ज्योतिष में 'प्रश्न एवं शकुन' को मिलाकर कुल पाँच स्कन्धों को पंच-स्कन्धात्मक ज्योतिष कहा जाता है। होरा स्कन्ध से 'प्रश्न' एवं संहिता स्कन्ध से शकुन की उत्पत्ति हुई है। प्रश्न ज्योतिष के अनेकों ग्रन्थ आज प्राप्त होते हैं, क्योंकि ज्योतिष जगत में प्रश्न का बड़ा महत्व है।

किसी व्यक्ति का कोई भी कार्य होगा या नहीं, किस प्रकार होगा ? इत्यादि अनेक प्रश्न लोग दैवज्ञों (ज्योतिषीयों) से पूछते हैं। प्रश्न का उत्तर बताने की कई रीतियाँ हैं। कुछ लोग प्रश्नकालीन लग्न के अनुसार फल बताते हैं, इसलिए प्रश्न होरास्कन्ध का एक अंग कहा जा सकता है परन्तु कुछ रीतियाँ ऐसी हैं, जिनका ज्योतिष से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। फिर भी लोगों की यह धारणा है कि

ज्योतिषी सभी प्रकार के भविष्य बतातें हैं, इसलिए हर एक प्रकार का प्रश्न ज्योतिष का विषय समझा जाता है और सभी प्रश्न ग्रन्थों की गणना ज्योतिषग्रन्थों में की जाती है। यथार्थ में ज्योतिष से इतर विषय सम्बन्धित प्रश्न ज्योतिष के प्रश्न स्कन्ध में नहीं आता है।

संहितास्कन्ध का ही एक अंग शकुन है। इस पर आचार्य नरपतिकृत नरपतिजयचर्या नामक एक बड़ा प्राचीन अर्थात् विक्रम संवत् १२३२ का ग्रन्थ है। नरपति जैन प्रतीत होते हैं। इसे उन्होंने अन्हिलपट्टन में बनाया था। इनके पिता आम्रदेव धारानगरी में रहते थे। वे बहुत बड़े विद्वान थे। इस ग्रन्थ में स्वर द्वारा मुख्यत: राजाओं के लिए शुभाशुभ फल बताये हैं। ग्रन्थकार ने इसकी ग्रन्थसंख्या ४५०० लिखी है। प्रतीत होता है इसे स्वरोदय और सारोद्धार भी कहते हैं। जिन ग्रन्थों के आधार पर यह बना है उनके नाम ग्रन्थकार ने आरम्भ में इस प्रकार लिखे हैं –

श्रुत्वादौ यामलान् सप्त तथा युद्धजयार्णवम्।
कौमारीकौशलंचैव योगिनां योगसम्भवम्।।
रक्तत्रिमूर्तिकं च स्वरसिंहं स्वरार्णवम्।
भूबलं गारूडं नाम लम्पटं स्वरभैरवम्।।
तन्त्रबलंच ताख्यं च सिद्धान्तं जयपद्धतिम्।
पुस्तकेन्द्रं पटौश्रीदप्रणं ज्योतिषार्णवम्।।

इनके अतिरिक्त इसमें वसन्तराज ग्रन्थकार तथा चूडामणि और गणितसार ग्रन्थों के नाम भी आये हैं, अत: ये सभी शके १०९७ के पहले के हैं। इस पर हरिवंशकृत जयलक्ष्मी नाम्नी तथा नरहरि, भूधर और रामनाथ की टीकायें हैं। नैमिषक्षेत्रवासी सूरदास के पुत्र राम वाजपेयी का स्वरशास्त्र पर समरसार नामक ग्रन्थ है। उस पर उनके भाई भरत की टीका है। यह स्वरशास्त्र मुख्यत: नासिका से निकले हुए वायु के आधार पर बनाया गया है। इस विषय के अन्य भी बहुत से ग्रन्थ है।

१.५ बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष

विदित हो कि ज्योतिषशास्त्र के अनेकों स्कन्ध हैं। सभी का वर्णन करना यहाँ करना सम्भव नहीं, परन्तु प्रमुखता और व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से यहाँ अन्य स्कन्धों का उल्लेख किया जा रहा हैं। सर्वप्रथम आप यहाँ नीचे दिए गए क्षेत्र में बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष को समझिये -

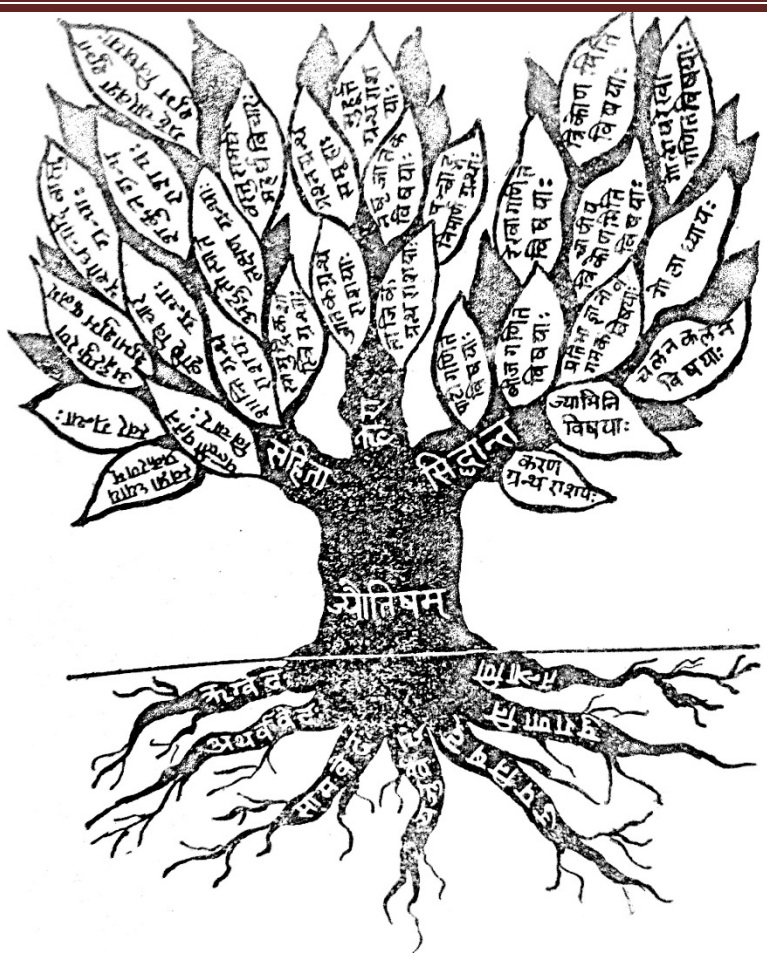

ज्योतिष कल्पद्रुम

आप चित्र में ज्योतिषशास्त्र रूपी कल्पवृक्ष को देख रहे है, जिसके मूल में चारों वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद है। साथ ही उपनिषद, पुराण एवं तन्त्र का भी उल्लेख है। उसी मूल से उपर आप ज्योतिषशास्त्र और उसके स्कन्धों को देख रहे हैं। सिद्धान्त, संहिता एवं होरा स्कन्ध के भी विभिन्न स्कन्ध आपको वृक्ष की शाखाओं में परिलक्षित हो रहा है।

सिद्धान्त स्कन्ध में पाटी गणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, ज्यामिति, चलनकलन, गोलाध्याय, करण ग्रन्थ, तन्त्र ग्रन्थ, चापीयत्रिकोणमिति, गोलीयरेखागणित, प्रतिभाबोधकम्, यन्त्रनिर्माण, वेधशाला, श्रृंगोन्नति आदि प्रमुख हैं।

होरा स्कन्ध के अन्तर्गत जातक ग्रन्थ, ताजिक ग्रन्थ, पंचांग निर्माण ग्रन्थ, लघुजातक, मुहूर्त्त ग्रन्थ

एवं प्रश्न ग्रन्थादि प्रमुख हैं।

संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत सामुद्रिक, वास्तु, वृष्टि, अद्भुतोत्पात, शकुन, शान्ति, स्वर, ग्रहचार शुभाशुभ, भूशोधनादि, पल्लीपतन विचार, स्वप्न, अंगस्फुरण विचार, रमल आदि प्रमुख हैं।

उपर्युक्त इन स्कन्धों के भी उपस्कन्ध हैं। इसीलिए ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त विस्तृत है। मेरी दृष्टि में इसके किसी एक विधा में ही मानव जीवन का यदि सम्पूर्ण काल लगा दिया जाय, तो कदाचित् वो भी अपूर्ण ही रह जाय, तथापि स्थूल रूप से इन सभी का अध्ययन आवश्यक है।

गोलाध्याय - गणित स्कन्ध में गोलाध्याय प्रमुख है जिसकी प्रशंसा करते हुए भास्कराचार्य कहते है कि –

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राज्यविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवकतृीहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथाऽत्र।।

अर्थात् भोजन में सभी व्यंजन उपलब्ध हो और घी न हों तो भोजन व्यर्थ है, राजा के बिना राज्य तथा अच्छे वक्ता के बिना सभा व्यर्थ है। उसी प्रकार गोल से अनभिज्ञ गणक (ज्योतिषी) नहीं हो सकता। अत: ग्रहों के समुचित ज्ञान के लिए 'गोल' का ज्ञान होना परमावश्यक है। इसकी महत्ता को देखते हुए आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में 'गोलाध्याय' का स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है।

त्रिकोणमिति – जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय त्रिकोणमिति में ज्या अ, कोज्या अ, स्प अ, कोस्प अ, छे अ, तथा कोछे अ का प्रयोग समस्त समीकरणों में करते हैं, उसी प्रकार आधुनिक गणित में हम **Sinθ, Cosθ, tanθ, Cosecθ, Secθ,** तथा **Cotθ** का प्रयोग करते हैं। अन्य सूत्रों को साधने के शेष सभी नियम लगभग समान होते हैं। मेरी दृष्टि में ज्योतिषशास्त्रीय विधि वैदिक पद्धति के अनुसार है, इसीलिए वो आधुनिक से श्रेष्ठ है।

इसी प्रकार बीजगणित, रेखागणित, गोलीयरेखागणित, ज्यामिति, चलनकलन तथा अन्य स्कन्ध भी महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

1. 'त्रि' शब्द का अर्थ होता है –
   क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6
2. प्रधानतया ज्योतिष शास्त्र के कितने स्कन्ध हैं –
   क. पाँच ख. चार ग. छ: घ. तीन
3. काल की सूक्ष्मतम इकाई क्या है?
   क. रेणु ख. त्रुटि ग. निमेष घ. घटी

4. सिद्ध: अन्ते यस्य स: ..... ?

   क. होरा ख. गणित ग. सिद्धान्त: घ. संहिता

5. 'ज्योतिषी' का पर्याय है?

   क. दैवज्ञ ख. गणक ग. कालवेत्ता घ. उपयुक्त सभी

यन्त्र वेध - वेध शब्द का निर्माण **'विध्'** धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में **"नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।"** नलिकादि यन्त्रों से ग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है।

दृष्टि तथा **यन्त्रभेद** से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है। यहाँ महर्षियों द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायामादि तपस्याओं से भक्तिज्ञानजन्य नेत्र द्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों के अवलोकन को **अन्तर्दृष्टिवेध** तथा स्व-स्व नग्न नेत्र द्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकन को **बाह्यदृष्टिवेध** माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणों से सूर्यादि ज्योति:पिण्डों को देखते हैं तो **यन्त्रवेध** होता है।

मुहूर्त्त – मुहूर्त्त ज्योतिषशास्त्र का अभिन्न अंग है। 'मुह' धातु में उरट प्रत्यय लगने से मुहूर्त्त शब्द बना है। इसके बिना हम किसी भी कार्य के शुभाशुभ परिणाम की कल्पना नहीं कर सकते हैं। यथा- व्रत, पर्व, उत्सव, विवाह, षोडशसंस्कार, यज्ञकर्म अथवा अन्य कोई भी शुभ कार्य हो अथवा श्राद्धादि (अशुभ कर्म) कार्य हो हम मुहूर्त्त के बिना उसका अनुशासन सम्यक रूप से नहीं कर सकते हैं। अत: मुहूर्त्त का ज्ञान ज्योतिष के अध्येताओं के लिए परमावश्यक है। सामान्यतया लोग ज्योतिषी के पास शुभाशुभ मुहूर्त्त ज्ञान के लिए ही जाते है, अथवा ज्योतिषी से शुभाशुभ मुहूर्त्त जानने की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं।

यदि देखा जाय तो ज्योतिषशास्त्र के उदयकाल में ही मुहूर्त्त सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में संहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थीं, पर उत्तरमध्यकाल में इस अंग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनों की संख्या में हुई हैं। शक संवत् १४२० में नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्त्ततत्व, शक् संवत् १४१३ में नारायण कृत मुहूर्त

मार्तण्ड, शक् संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि, शक् संवत् १५४९ में विट्ठल दीक्षित कृत् मुहूर्तकल्पद्रुम आदि मुहूर्त्त सम्बन्धी रचनाएँ हुई हैं। इस युग में मानव के भी आवश्यक कार्यों के लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

प्रश्नशास्त्र – यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। इसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है। ईसवी सन् की ५वीं और ६ठी शती में केवल पृच्छक के उच्चारित अक्षरों से फल बतलाना ही प्रश्नकर्ता के अन्तर्गत था; लेकिन आगे जाकर इस शास्त्र में तीन सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ – १. प्रश्नाक्षर सिद्धान्त २. प्रश्न लग्न सिद्धान्त, ३. स्वरविज्ञान सिद्धान्त। दिगम्बर जैन ग्रन्थों की अधिकतर रचनाएँ दक्षिण भारत में होने के कारण प्राय: सभी प्रश्न ग्रन्थ प्रश्नाक्षर सिद्धान्त को लेकर निर्मित हुए हैं। अन्वेषण करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि, चन्द्रोन्मीलन प्रश्न, आयज्ञानतिलक, अर्हच्चूडामणि आदि ग्रन्थों के आधार पर ही आधुनिक काल में केरल प्रश्नशास्त्र की रचना हुई है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा के समय से प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्त का प्रचार भारत में तीव्रता से हुआ है। ९वीं १०वीं और ११वीं शती में इस सिद्धान्त को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर मिला है, जिससे अनेक स्वतन्त्र रचनायें भी इस विषय पर लिखी गयी है। इस शास्त्र की परिभाषा में उत्तर मध्यकाल तक अनेक संशोधन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। चर्या, चेष्टा, हाव-भाव आदि के द्वारा मनोगत भावों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भी इस शास्त्र के अन्तर्गत आता है।

रमल – रमल का प्रचार विदेशियों के संसर्ग से भारत में हुआ है। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती है। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए कहा गया है कि – **'वेदतत्वोपरिकृतं रम्लशास्त्रं च सूरिभि:। तेषां भेदा: षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते।'**

अर्थात् अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्वों पर विद्वानों ने रमलशास्त्र बनाया है एवं इन चार तत्वों के सोलह भेद कहे हैं, अत: रमल के पाशे में १६ शकलें बतायी गयी है।

'रमलनवरत्न' के मंगलाचरण में पूर्व के रमलशास्त्रियों को नमस्कार किया गया है: -

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधै:। उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम्।।

अर्थात् प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार करके परमसुख नामक ग्रन्थकर्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र में से सुन्दर नवरत्न को निकाला है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७ वीं शती है।

शकुनशास्त्र – इसका अन्य नाम निमित्त शास्त्र भी मिलता है। पूर्वमध्यकाल तक इसने पृथक् स्थान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु संहिता के अन्तर्गत ही इसका विषय आता था। कालान्तर में ईसवी सन्

की १०वीं, ११वीं, और १२वीं शतियों में इस विषय पर स्वतन्त्र विचार होने लग गया था, जिससे इसने अलग शास्त्र का रूप प्राप्त कर लिया। वि0सं0 १०८९ में आचार्य दुर्गदेव ने अरिष्ट विषय को भी शकुनशास्त्र में मिला दिया था। आगे चलकर इस शास्त्र की परिभाषा और भी अधिक विकसित हुई और इसकी विषयसीमा में प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभों का ज्ञान प्राप्त करना भी आ गया। वि0सं0 १२३२ में अह्निपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपतिचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से स्वरविज्ञान द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने वाले शुभाशुभ शकुनों का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेना के पुत्र बल्लालसेन ने श.सं. १०९२ में अद्भुतसागर नाम का एक संग्रह ग्रन्थ रचा है, जिसमें अपने समय के पूर्ववर्ती ज्यातिर्विदों की संहिता सम्बन्धी रचनाओं का संग्रह किया है। कई जैन मुनियों ने शकुन के उपर वृहद् परिमाण में रचनायें लिखी हैं। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्हीं तत्वों की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी है।

ताजिक शास्त्र - यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अंगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करनेवाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। ताजिक शास्त्र में इकबाल आदि षोडश (16) प्रमुख योगों की और पुण्यादि 50 सहमों की चर्चा हैं।

इसके अतिरिक्त भी ज्योतिष के कई स्कन्ध एवं उपस्कन्ध हैं। अत्यधिक विस्तार हो जाने के कारण यहाँ सभी का उल्लेख सम्भव नहीं है।

वास्तु - "वास्तु" शब्द का सामान्य अर्थ निवास है। "वस निवासे" धातु से उणादि सूत्र "वसेस्तुन" के द्वारा "तुन" प्रत्यय करने पर वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ "वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तु" है। जब किसी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित स्वरुप प्रदान कर उसे निवास के योग्य बनाया जाता है, तो उसे वास्तु कहा जाता है। अत: भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मन्दिर और नगरादि समस्त रचनाऐं जिनमें मनुष्य वास करते है उन्हे 'वास्तु' पद से सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्मा जी को वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक के रूप में माना जाता है। वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों और पुराणों में प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण में भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति इन अठारह आचार्यों का वर्णन किया गया है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. वेध शब्द का निर्माण .....धातु से हुआ है।
2. पृथुयश ..... के पुत्र थे।
3. रमल के पाशों में ..... शकलें बतायी गयी है।
4. अद्भुतसागर ..... की रचना है।
5. ताजिकशास्त्र में ..... सहमों का उल्लेख किया गया है।
6. वास्तु शब्द में ..... प्रत्यय है।

१.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही अपने अस्तित्व को लेकर प्रकट हुआ था। अत: उसका आरम्भ ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही हुआ है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। कालान्तर में उसके रूपों में परिवर्तन होता चला गया। इस शास्त्र के अनेकों प्रवर्त्तक हुए, जिनमें ब्रह्मा जी से लेकर शौनकादि पर्यन्त विविध नामों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषशास्त्र अपने विविध स्कन्धों के साथ सृष्टि में कल्पवृक्ष की भाँति व्याप्त होकर युग-युगान्तर से लोकोपकारी रहा है। 'त्रि' शब्द का अर्थ तीन (3) होता है, जो संख्यावाची है। प्रधानता के दृष्टिकोण से ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध हुए – १.सिद्धान्त या गणित २. होरा या फलित 3. संहिता। इन्हीं तीनों स्कन्धों को 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है। इन्हीं स्कन्धों के कई उपस्कन्ध हुए, जिन्हें 'बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है।

१.७ पारिभाषिक शब्दावली

त्रि – 'त्रि' संस्कृत का शब्द है, जिसका अर्थ तीन (3) होता है। यह संख्यावाची है।

पंच – पंच का शाब्दिक अर्थ है – पाँच। यह भी संख्यावाची है।

बहुस्कन्धात्मक – बहु का अर्थ है – अनेक। विविध प्रकार के स्कन्ध को बहुस्कन्धात्मक कहा जाता है।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्। जिसकी गणना की जाय, और जो संख्यावाची हो, उसे

गणित कहते है।

सिद्धान्त – सिद्धः अन्ते यस्य सः सिद्धान्तः। जो अन्त में जाकर सिद्ध हो जाय, उसे सिद्धान्त कहते है।

होरा – अहोरात्र शब्द के आदि और अन्त शब्द का लोप होन पर होरा शब्द का निर्माण हुआ है। जिसका अर्थ समय होता है।

संहिता – जिस स्कन्ध के अन्तर्गत समष्टिपरक फलादेश आदि कर्तव्य किये जाते है, उसे संहिता कहते हैं।

१.८ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. घ 3. ख 4. ग 5. घ

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. विध् 2. वराहमिहिर 3. १६ 4. बल्लालसेन 5. ५० 6. तुन्

१.९ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित

(ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध

(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री

(घ) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – आचार्य भास्कराचार्य

१.१० सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त्री

ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

१.११ निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिस्कन्ध ज्योतिष से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिये।
2. पंचस्कन्धात्मक ज्योतिष का विवेचन कीजिये।
3. बहुस्कनधात्मक ज्योतिष से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
4. प्रस्तुत इकाई के अनुसार आप ज्योतिष के विविध स्कन्धों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।
5. ज्योतिषशास्त्र के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 प्रमुख स्कन्ध - सिद्धान्त

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना

२.२ उद्देश्य

२.३ सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा

२.४ सिद्धान्तज्योतिष के भेद – सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण

२.५ काल क्रम से सिद्धान्त ज्योतिष का विकास

२.६ सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ व आचार्य

२.६.१ अन्य आचार्य व उनके ग्रन्थ

२.७ सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषय

अभ्यास प्रश्न

२.८ सारांश

२.९ पारिभाषिक शब्दावली

२.१० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

२.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

२.१२ सहायक पाठ्य सामग्री

२.१३ निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना –

ज्योतिषशास्त्र सिद्धान्त, संहिता, होरा भेद से तीन स्कन्धों में विभक्त है। उनमें से सिद्धान्त ज्योतिष शास्त्र गणित शब्द से भी जाना जाता है। यह स्कन्ध भी ग्रहगणित, पाटीगणित व बीजगणित भेद से तीन भागों में विभक्त है। ब्रह्मा, वसिष्ठ, सोम, सूर्य आदि इसके प्रवर्तक आचार्य माने गये है। इसके उपरान्त आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, कमलाकर आदि ने इसका विकास किया। आर्ष सूर्यसिद्धान्त, आर्यभट रचित आर्यभटीय, ब्रह्मगुप्त रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, वराहमिहिर रचित पञ्चसिद्धान्तिका, भास्कराचार्य रचित सिद्धान्तशिरोमणि और कमलाकर रचित सिद्धान्ततत्त्वविवेक इस स्कन्ध मान्य ग्रन्थ हैं। परन्तु आचार्य लगध मुनि प्रणीत वेदाङ्गज्योतिष संज्ञक ग्रन्थ ही सिद्धान्त ज्योतिष का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सिद्धान्त ज्योतिष के मुख्य ग्रन्थ, ग्रन्थकार व मुख्य विषयों का इस पाठ में आप अध्ययन करेंगे।

२.२ उद्देश्यम्

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप –

- सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष के विविध भेदों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष के विविध ग्रन्थ व ग्रन्थकारों के विषय में जानेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष में वर्णित विविध विषयों का प्रतिपादन करने में कुशल हो सकेंगे।
- भारतीय गणित व खगोल शास्त्र के विकास की परम्परा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

२.३ सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा –

"अन्ते सिद्धः सिद्धान्तः" इस निर्वचन से ज्ञात होता है निरीक्षण परीक्षण आदि द्वारा ग्रहगति संबन्धि जो मत अन्त में उपस्थापित किया जाता है वही 'सिद्धान्त' कहा जाता है। उदाहरणार्थ जैसे अहर्गण, उदयान्तर, देशान्तर, चर, मन्दफल, शीघ्रफल आदि संस्कारों द्वारा ग्रह स्पष्ट होते है। ग्रह गणित स्पष्ट होने पर वेधशाला में जाकर दृक्सिद्ध करने हेतु यन्त्रों द्वारा वेधकार्य किया जाता है। यदि गणना द्वारा साधित ग्रह यन्त्रों द्वारा वेध करने पर भी उसी स्थान पर दिखाई दे तो ही वे ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त्त साधन, कुण्डली निर्माण व फल कथन हेतु प्रयुक्त होते हैं। अतः कहा गया – **"यदन्ते सिद्धः सिद्धान्तः"।**

भास्कराचार्य के मत से जिस शास्त्र में त्रुटि से प्रारम्भ कर प्रलय तक काल की गणना, सौर चान्द्र सावन नाक्षत्र आदि नवविध काल के प्रभेद, ग्रहचार के नियम, व्यक्त व अव्यक्त गणित का विवेचन, दिग्देशकाल का ज्ञान, भूगोल, खगोल और ग्रहों की स्थिति, वेधयन्त्रों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन होता है वह सिद्धान्त है। जैसा कहा है –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादियत्रोच्यते।
सिद्धान्त स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धस्तृतीयोऽपरः।।

"**गण्यते संख्यायते येन तद्गणितम्**" अर्थात् जिसके द्वारा गणना की जाती है और संख्याओं का बोध होता है वह गणित है। उसके भी चार भेद हैं – १.व्यक्त २.अव्यक्त ३. ग्रह एवं ४.गोल। जहां व्यक्त संख्याओं के सङ्कलन व्यवकलन आदि गणित का वर्णन होता है व्यक्त गणित कहलाती है। जिस गणित में अव्यक्तों (यावत् तावत् कालक पीलक आदि) की सापेक्ष्य बुद्धि से गणित होती है उसे अव्यक्त गणित कहा गया। ग्रहों की गति स्थिति संबंधित गणित को ग्रहगणित कहा गया। गोल से वेध आदि द्वारा गणना की विधि गोलगणित के अन्तर्गत माना गया। इन्हीं चारों विधाओं का निरूपक सिद्धान्त है। जैसा कि कहा गया – '**व्यक्ताव्यक्तभगोलवासनामयः सिद्धान्तः**'। श्रीपति के कथन के अनुसार भी –

शतानन्दध्वस्ति प्रभृतित्रुटिपर्यन्तसमयप्रमाणं
भूधिष्ण्यग्रहसंनिवहसंस्थानकथनम्।
ग्रहकेन्द्राणां चाराः सकलगणितं यत्र गदितं
स सिद्धान्तः प्रोक्तो विपुलगणितस्कन्धकुशलैः।।

यह सिद्धान्त स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सिद्धान्त के बिना होरा व संहिता शास्त्रों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। क्योंकि जन्म कुण्डली का निर्माण व ग्रह गोचर की स्थिति का ज्ञान सिद्धान्त ज्योतिष के बिना नहीं किया जा सकता। अतः आचार्यों ने सिद्धान्त स्कन्ध को ज्योतिष का आधार कहा। होरा स्कन्ध का मुख्य विषय है ग्रहों के मानव जीवन पर पडने वाले शुभाशुभ प्रभाव का विवेचन और संहिता स्कन्ध का मुख्य विषय है ग्रहों के भूगोलीय समष्टिगत प्रभाव का वर्णन। सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्य विषय है - ग्रहगणित अथवा ग्रह स्पष्टीकरण। शुद्ध ग्रहस्पष्टीकरण के बिना ग्रहों के प्रभाव का सही वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी कारण से

भास्कराचार्य ने कहा – **"खेटैः स्फ़ुटैरेव फलस्फुटत्वम्"** अर्थात् स्पष्ट ग्रहों के द्वारा ही स्पष्ट फल जाना जा सकता है। अतः किसी भी ग्रह के फल कथन से पूर्व उसके स्थान का शुद्ध स्पष्टीकरण परमावश्यकं होता है। और ग्रह का शुद्ध रूप से साधन सिद्धान्त के ज्ञान के बिना संभव नहीं होता। अतः सिद्धान्त ज्योतिष का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए भास्कराचार्य ने कहा कि जैसे राज्य शासन में भित्ति पर चित्र रूप में अंकित राजा और अत्यन्त सुगठित लकडी का बना हुआ सिंह कुछ भी करने में असमर्थ होता है उसी प्रकार जातक व संहिता का ज्ञाता दैवज्ञ यदि सिद्धान्त ज्योतिष से अनभिज्ञ हो तो काल की गणना में असमर्थ होकर उसके भेद व प्रभेद का विवेचन करने में असमर्थ होता है, जैसा कि कहा है –

जानन् जातकसंहितासगणितस्कन्धैकदेशा अपि।
ज्योतिः शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भीतौ यथा।
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः।।

२.४ सिद्धान्त ज्योतिष के भेद –

सिद्धान्त स्कन्ध के भी तीन भेद होते हैं – प्रथम सिद्धान्त, द्वितीय तन्त्र और तृतीय करण।

(क) सिद्धान्त - 'सृष्ट्यादेर्यद्ग्रहज्ञानं सिद्धान्तः स उदाहृतः' सिद्धान्त ग्रन्थों में सृष्ट्यादि से अथवा कल्पादि से ग्रहगणित की जाती है। आज उपलब्ध प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थों में सुप्रसिद्ध आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त है। इसके उपरान्त मानव रचित ग्रन्थों में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, शिष्यधीवृद्धिद, सिद्धान्तशिरोमणि, सिद्धान्तसार्वभौम, सिद्धान्ततत्त्वविवेक आदि अनेक सिद्धान्त ग्रन्थ प्राप्त होते है। वस्तुतः सिद्धान्त ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तो का वर्णन सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में ही कर दिया गया है परन्तु अत्यन्त प्राचीन होने के कारण उसके आधार पर साधित ग्रहों में कुछ स्थूलता प्राप्त होती है, किन्तु यह आर्ष ग्रन्थ होने से इसके द्वारा वर्णित विषयों को आज भी अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। सिद्धान्ततत्त्वविवेक भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वा तात्त्विक ग्रन्थ माना जाता है। तथा भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष परम्परा का अन्तिम ग्रन्थ भी माना जाता है। ग्रन्थ के रचयिता भट्ट कमलाकर ने मुनीश्वर भास्कर ब्रह्मगुप्त आदि पूर्वाचार्यों का पद पद पर सयुक्तिक खण्डन भी किया है। सिद्धान्त शिरोमणि सिद्धान्त ज्योतिष का साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ है, जिसमें सिद्धान्त ज्योतिष के सभी विषयों का आद्योपान्त वर्णन किया गया है, अतः इसका प्रमाणत्व स्वीकार किया जाता है।

(ख) तन्त्र – 'युगादितो यत्र ग्रहज्ञानं तन्त्रं तन्निगद्यते' अर्थात् जिस भाग में युगादि से प्रारम्भ कर ग्रहगणित की जाती है, उसकी तन्त्र संज्ञा होती है। तन्त्र ग्रन्थों में आर्यभट का आर्यभटीय तन्त्रग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। इस तन्त्र ग्रन्थ के गणितपाद में वर्गमूल आनयन, घनमूल आनयन, व्यास मान से परिधि का साधन आदि विषय संभवतः विश्व में प्रथम बार अत्यन्त स्पष्ट रीति से वर्णित किये गये है। ग्रन्थ के गोलपाद में उन्होंने भूमि के अपने अक्ष पर भ्रमण का आधारभूत सिद्धान्त विश्व इतिहास में सर्वप्रथम प्रतिपादित किया। आर्यभट ने उस समय निम्न वाक्यों के द्वारा यह सिद्धान्त उपस्थापित किया –

अनुलोमगतिनौस्थ: पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।

(ग) करण - 'शकाद् यत्र ग्रहज्ञानं करणं तत् प्रकीर्तितम्' अर्थात् जहां अभीष्ट शकवर्ष ग्रहगणित का निरूपण किया जाय सिद्धान्त ज्योतिष की उस शाखा को 'करण' कहा गया। करणग्रन्थों में ग्रहलाघव, केतकी ग्रहगणित, सर्वानन्दकरण आदि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। ग्रहलाघव ग्रन्थ द्वारा साधित ग्रहों में भी कुछ स्थूलता है। अतः आज के समय दृगणित की एकता प्राप्त करने हेतु प्रायशः भारतवर्ष के अनेक पञ्चाङ्ग केतकी ग्रहगणित के आधार पर ही निर्मित किये जाते है।

इस प्रकार से सिद्धान्त स्कन्ध भी तीन भागों में विभक्त हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों में कल्पादि अथावा सृष्ट्यादि से, तन्त्र ग्रन्थों में युगादि से तथा करण ग्रन्थों में अभीष्ट शकाब्द से अहर्गण का साधन कर मध्यम ग्रह का आनयन व ग्रहस्पष्टीकरण किया गया।

२.५ कालक्रम के अनुसार सिद्धान्त ज्योतिष का विकास –

शक पूर्व पञ्चम शताब्दी से प्रारम्भ कर षोडश शक काल पर्यन्त ही भारतीय ज्योतिषशास्त्र के विकास का मध्यम काल था। इस काल में ग्रहों की मध्यम गति, स्पष्ट स्थिति, दिग्देशकाल का विवेचन, ग्रह युति, ग्रह-नक्षत्रों का उदयास्त विचार, चन्द्रशृङ्गोन्नति, पात, भूस्थिति, कालमान, इत्यादि विषय में सिद्धान्तों का निरूपण किया गया। अतः यह काल सिद्धान्त काल नाम से भी जाना जाता है। यह सिद्धान्त काल भी सिद्धान्त प्रतिपादन व उनकी व्याख्या के आधार पर पूर्व व उत्तर भाग में विभक्त है। सूर्यसिद्धान्त से प्रारम्भ कर ब्रह्मगुप्त पर्यन्त इसका पूर्वमध्य काल तथा उसके उपरान्त राजा जयसिंह तक का समय उत्तर मध्यकाल कहलाता है। अब सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख आचार्या व प्रमुख ग्रन्थों के विषय में वर्णन करते है।

२.६ सिद्धान्त ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य व ग्रन्थ –

आचार्य लगध से प्रारम्भ कर आचार्य सुधाकर पर्यन्त जो मूल सिद्धान्त ग्रन्थ के प्रणेता हैं उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

लगधाचार्य एवं वेदाङ्ग ज्योतिष – आचार्य लगध का मूलग्रन्थ तो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है परन्तु ग्रन्थ के एक श्लोक में उसका नाम निर्दिष्ट किया गया है –

"कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः"

वेदाङ्ग ज्योतिष में धनिष्ठार्ध में सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण का वर्णन कहा गया, इससे ग्रन्थ का रचनाकाल १४१० शकपूर्व सिद्ध होता है। वेदाङ्ग ज्योतिष न केवल सिद्धान्त ज्योतिष का अपितु सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना गया है।

आर्यभटीय – आर्यभट रचित आर्यभटीय ग्रन्थ पौरुषेय उपलब्ध ज्योतिष ग्रन्थों में प्रथम है। आर्यभट स्वयं को कुसुमपुर निवासी और ३९८ शकाब्द समय का बताया है। कुसुमपुर को कुछ विद्वान् पाटलीपुत्र का तथा कुछ विद्वान् दक्षिण प्रदेश के किसी नगर का मानते है। आर्यभट रचित आर्यभटीय चार भागों में विभक्त हैं – गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। जैसा कि ग्रन्थ में कहा है –

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां पलं ब्रह्म।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम्।।

चार भागों में क्रम से १३, ३३, २५, ५० श्लोक हैं, इस प्रकार कुल १२१ श्लोक ग्रन्थ में हैं। आर्यभट ने विषय को संक्षिप्त बनाने के लिये वर्णों की सहायता से अङ्कों का निर्देश किया है। अङ्कों के लेखन की एक विलक्षण विधि उसने प्रयुक्त की है। उसमें ककार का १ अङ्क, खकार का २, गकार का ३, घकार का ४ इसी प्रकार क्रम से .....मकार का २५। और यकार ३०, रकार ४०, लकार ५०, वकार ६०, तालव्य शकार ७०, मूर्धन्य षकार ८०, सकार ९०, हकार १००। स्वरों का भी विशेष रूप से संख्या निर्देश किया गया – अ १(इकाई), आ १०(दहाई), इ १००(सैकडा), ई १०००(हजार), उः १०,००० (दश हजार) ऋ लक्ष, दीर्घ ऋकार का दशलक्ष, ऌकार का कोटी (करोड), दीर्घ ऌकार का दशकोटी (दश करोड), एकार अयुत (अरब), ऐकार का दश अयुत(दश अरब), ओकार का नियुत(खरब), औकार का दश नियुत(दस खराब)। जैसे – कि = क(१) +इ(सैकडा) = १००, खि = ख(२)+ इ(सैकडा) = २००, शि = श(७०)+इ(सैकडा) = ७०००, बु = ब(२३)+उ(दश हजार) = २३००० इत्यादि। इस विधि से अक्षरों के माध्यम से सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या का निर्देश किया गया है। ग्रन्थ में कल्पादि से आरभ्य कर युगकाल गणना, राश्यंशकला

संबंध, आकाश कक्षा का विस्तार, पृथ्वी सूर्य चन्द्रादि की गति, अङ्गुल हस्त पुरुष योजन आदि मानों का संबन्ध, पृथिवी का व्यास, सूर्यादि ग्रहों का बिम्बव्यास परिमाण, ग्रहों की क्रान्ति और विक्षेप, उनके पात मन्दोच्च स्थान, उनकी मन्द व शीघ्र परिधि का परिमाण, ज्याखण्डमान, अङ्कगणित, बीजगणित व रेखागणित आदि विषयों का क्रम से निर्देश किया गया है।

आर्यभट भूमी की गति भी मानते है। उन्होंने भूमि की भ्रमण संख्या की भी गणना की। पृथिवी के चलन का यह संभवतः विश्व में पहला लिखित प्रमाण है –

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।

आर्यभट की युगगणना पद्धति अन्य परवर्ती आचार्यों से भिन्न रही है। उनके अनुसार ७२ युगों से एक मन्वन्तर होता है। उनके मत में सभी युगपाद समान ही होते हैं। आर्यभट ने बुधवासर के सूर्योदय से महायुग का आरम्भ माना। इन्हे आर्यभट नाम से भी जाना जाता है।

लल्लाचार्य और शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र – आर्यभटसिद्धान्त में लल्ल ने बीजसंस्कार प्रदान किया है। शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र एक अपूर्व ग्रन्थ है। लल्ल तीक्ष्णमति वेधकर्ता थें। जब आचार्य ने देखा कि जिन विषयों में आर्य सिद्धान्त से संगतता नहीं बैठ पाई वहां उन्होने बीज संकार भी प्रदान किया। आचार्य सुधाकर उन्हें ४२१ शकाब्द काल का मानते है। इसके विपरीत शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित उन्हें ५६० शकाब्द काल का मानते है।

वराहमिहिर और पञ्चसिद्धान्तिका – आचार्य वराहमिहिर ने पूर्ववर्ती पांच प्राचीन सिद्धान्तों का संकलन पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ में किया है। जैसा कि –

पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

नारायण ने कालचक्र प्रवर्तन के लिये सूर्य को जो उपदेश दिया वहीं **सौर सिद्धान्त** है
उसे आर्यभट स्मरण करते है। पितामहो ब्रह्मा ने जिस को रहस्य को वसिष्ठ को कहा

वह **पैतामह सिद्धान्त** कहलाया। ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट गणित स्वबुद्धियोग से वसिष्ठ ने जो पराशर को उपदेश दिया वह **वासिष्ठ सिद्धान्त** कहलाया। वसिष्ठ प्राप्त जो शास्त्र पराशर ने मुनियों गर्गादि आचार्यों को उपदेश दिया व जिसे पुलिश ने कहा वह **पौलिश सिद्धान्त** कहलाया। जो शास्त्र रोमक को और यवन जाति को ब्रह्मा के शाप से उत्पन्न सूर्य ने कहा तथा रोमक नगर में विस्तारित किया वही **रोमक सिद्धान्त** कहलाया।

इनमें से सौरसिद्धान्त अनुभव विषयक है, पौलिशकृत सिद्धान्त दृक्प्रतीति विषयक और

रोमक उससे भी प्राचीन है। पैतामह और वसिष्ठसिद्धान्त तो तु नितान्त ही प्राचीन है जिनके अनुसार प्राप्त ग्रहस्थिति सही प्राप्त नहीं हो पाती है। अतः आचार्य वराहमिहिर ने कहा –

पोलिशकृतः स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।

स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ।।

कुछ विद्वानों का मत है कि वराहमिहिर का जातकार्णवसंज्ञक करणग्रन्थ भी था। आचार्य वराहमिहिर का काल ४२७ शकवर्ष माना जाता है। ४०७ वर्ष में उनका जन्म हुआ और ५०९ शकवर्ष में वे दिवङ्गत हुए। उनके पिता और गुरु का नाम आदित्यदास था। उनका निवास स्थान कापित्थ ग्राम था।

भास्कर प्रथम – प्रथमभास्कर का समय ५३० शकाब्द अनुमानित है। उनके दो ग्रन्थ प्राप्त होते है महाभास्करीय और लघुभास्करीय। इनके द्वारा रचित आर्यभटीय भाष्य प्रसिद्ध है। ये दाक्षिणात्य थे।

ब्रह्मगुप्त और ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त – ब्रह्मगुप्त महान् ज्योतिषी, महान् अन्वेषक और वेधकुशल थें। वेध के प्रसङ्ग में जब आचार्य ब्रह्मगुप्त ने देखा कि प्रचलित सिद्धान्त ग्रन्थों से साधित ग्रह गणित एवं वेध द्वारा प्राप्त वास्तविक ग्रहों की स्थिति में बहुत अन्तर प्राप्त हो रहा है तब उन्होंने दृक् तुल्यग्रहों की स्थिति का साधन करने वाले सिद्धान्त का प्रणयन किया। उनके द्वारा रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और खण्डखाद्यक नामक करणग्रन्थ सम्प्रति समुपलब्ध होते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित चक्रियचतुर्भुजप्रमेय भारतीय बीज गणित के विकास में एक बडी उपलब्धि माना जाता है। ज्या के बिना भुज और कोटि का आनयन, ज्या से चाप आनयन सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने ही किया। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का प्रणयन ५५० शकाब्द काल मे हुआ।

आचार्य मुञ्जाल, बृहन्मानस और लघुमानस – आचार्य मुञ्जाल भी ब्रह्मगुप्त के समान स्वतन्त्र अन्वेषक और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थें। उनका स्थितिकाल ८५४ शकाब्द माना जाता है। मुञ्जाल ने ८५४ शकाब्द में ६°/५०' अयनांश का मान बताया और अयनांश की वार्षिकी गति एक कला तुल्य बताई। इससे पूर्व किसी भी पौरुषेय ग्रन्थ में अयनचलन के विषय में वर्णन नहीं किया गया था। मुञ्जाल ने चन्द्रस्पष्ट में विशेष संस्कार प्रदान किये जो कि इससे पूर्व किसी आचार्य ने प्रदान नहीं किये थें। मुञ्जाल ने बृहन्मानस नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और लघुमानस नामक करणग्रन्थ की रचना की।

द्वितीय आर्यभट और महासिद्धान्त – आर्यसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने और लल्ल ने भी जो दोष निर्दिष्ट किये उनका निराकरण करते हुए द्वितीय आर्यभट ने अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इनके

द्वारा रचित ग्रन्थ महासिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध है। ग्रन्थ में कुल अष्टादश अध्याय हैं। पाटीगणित, अङ्कगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय हैं । अष्टादश अध्याय में बीजगणित का निरूपण किया। उन्होंने सप्तर्षीयों की गति को भी माना और उनके कल्प भगणों को भी प्रस्तुत किया। उनका स्थितिकाल शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने ८७५ शकाब्द अनुमित किया है।

श्रीपति और सिद्धान्तशेखर – इनका स्थितिकाल ९६० शकाब्द माना गया है। सिद्धान्त शेखर, धीकोटिदकरण, रत्नमाला और जातकपद्धति इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। भास्कराचार्य अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में श्रीपति को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

भोजदेव और राजमृगाङ्क – भोजदेव का राजमृगाङ्क ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त का करण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रणयन काल ९६४ शकाब्द माना गया है। इस ग्रन्थ में मध्यम व स्पष्ट संज्ञक दो अधिकार प्राप्त होते हैं जिनमें ६९ श्लोक हैं। भोजदेव ने ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त में बीज संस्कार प्रदान किया।

भास्कराचार्य और सिद्धान्त शिरोमणि – भास्कराचार्य १०३६ शकाब्द में उत्पन्न हुए। वे शेखरकरण के कर्ता महेश्वर के पुत्र और सह्यकुल पर्वतप्रान्त ग्राम के निवासी थें। उनके पिता ही उनके गुरु थें। उनका सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और करणकुतूहल संज्ञक करण ग्रन्थ है। सिद्धान्त शिरोमणि उनकी एक विलक्षण रचना है। सिद्धान्त शिरोमणि का प्रणयन काल १०७२ शकाब्द है। सिद्धान्त शिरोमणि के चार भाग हैं – पाटीगणित अर्थात् लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित और गोलाध्याय। कुछ विद्वान् उत्तरभाग के दो भागों को सिद्धान्त शब्द से भी कहा है ।

पाटी गणित स्वरूप लीलावती ग्रन्थ तो अङ्कगणित का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही है। इसमें २७८ पद्य हैं। इसमें विविध परिमाण निर्देश, सङ्ख्यान विधि, परिकर्माष्टक (पूर्णाङ्कों का योग, अन्तर, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि, अपूर्णाङ्कों का परिकर्माष्टक, शून्य का परिकर्माष्टक) त्रैराशिक, पञ्चराशिक, क्षेत्रफल, घनफल, कुट्टक, पाक्षिक विपर्यय, सर्वांशिक विपर्यय आदि का निरूपण किया । लीलावती ग्रन्थ की जितनी टीकाऐं हैं उतनी किसी अन्य गणित ग्रन्थ की उपलब्ध नहीं होती है। उनके नाम है – गोवर्धन रचित गणितामृतसागरी, गणेशदैवज्ञ रचित बुद्धिविलासिनी, धनेश्वर रचित लीलावतीभूषण, महीदास रचित महीदासी, मुनीश्वर रचित लीलावती विवृति, महीधर रचित लीलावती विवरण, रामकृष्ण रचित गणितामृतलहरी, नारायण रचित पाटीगणितकौमुदी, रामकृष्ण रचित मनोरञ्जना, रामचन्द्र रचित लीलावतीभूषण, विश्वरूप रचित निसृष्टदूती, सूर्यदास रचित गणितामृतकूपिका, चन्द्रशेखर रचित उदाहरण, विश्वेश्वर रचित उदाहरण, टीकाराम रचित चन्द्रकला इत्यादि।

बीजगणित इस ग्रन्थ का द्वितीय भाग है। इसमें धनर्णषड्विध, शून्यसङ्कलनादि, अव्यक्तकल्पनासङ्कलनादि, अनेकवर्णषड्विध, करणीषड्विध, कुट्टक, वर्गप्रकृति, चक्रवाल, एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णमध्यमाहरण और भावित विषयों का निरूपण किया गया हैं । लीलवती ग्रन्थ का १५०९ शकाब्द में और बीजगणित का १५९७ शकाब्द में पर्शियन भाषा में रूपान्तर किया गया। और दोनों ग्रन्थों का १७५५ शकाब्द में अंग्रेजी भाषा में रूपान्तर हुआ।

ग्रहगणित इस ग्रन्थ का तृतीय भाग है। इसमें उपोद्घात, मध्यमाधिकार, मानाध्याय, भगणाध्याय, ग्रहानयन, कक्षाध्याय, अधिकमासादिविचार, भूपरिध्यादि विषय, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, ग्रहच्छायाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार और पाताधिकार विषय विवेचित किया गया है।

गोलाध्याय इसका चतुर्थ पाद है। इसमें उपोद्घात, गोलस्वरूपाध्याय, मध्यमगतिवासना, छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, त्रिप्रश्नवासना, ग्रहणवासना, उदयास्तवासना, शृङ्गोन्नतिवासना, यन्त्राध्याय, ऋतुविचार, प्रश्नाध्याय आदि विषय क्रम से विवेचित किया गया।

भास्कराचार्य का करणकुतूहल करण ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसका प्रारम्भ काल ११०५ शकाब्द है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रसूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुति, पर्वसम्भव संज्ञक दश अधिकार हैं। करणकुतूहल की सोड्ढल, पद्मनाभ, केशवार्क, हर्षगणित, विश्वनाथ, एकनाथ, शङ्करादि प्रणीत टीकाऐं हैं। रत्नमाला टीका में माधव भास्कराचार्य द्वारा प्रणीत व्यवहारप्रदीप संज्ञक मुहूर्त्त ग्रन्थ का भी उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार भास्कराचार्य के विवाहपटल संज्ञक ग्रन्थ का भी अस्तित्व शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने सूचित किया है।

भास्कराचार्य ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त से और राजमृगाङ्क से विषयों का ग्रहण कर ग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ में वेध साध्य और विचार साध्य नवीन वस्तुओं का निर्देश किया गया है। ग्रन्थ में विशेष रूप से गोल को अत्यधिक स्पष्ट किया गया। त्रिप्रश्नाधिकार में नवीन रीतियां निर्दिष्ट की गई

है। ग्रन्थ में शङ्करोदिष्ट दिक्छाया साधन का वर्णन किया गया है जो कि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। पात साधन में पूर्वाचार्यों के मत का विवेचन करते हुए अपने मत को उपस्थापित किया।

उदयान्तर इनका नवीन शोध है। अहर्गण द्वारा आगत ग्रह मध्यम सूर्योदय काल के होते हैं। उन्हें उदयकालीन करने हेतु पूर्ववर्ती आचार्यों ने केवल भुजान्तर व चरसंस्कार ही निर्दिष्ट किये थें। परन्तु भास्कराचार्य ने उसमें उदयान्तर संज्ञक संस्कार को भी जोडा । अनेक स्थलों पर भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की त्रुटीयों की ओर सङ्केत किया। इससे भास्कराचार्य न केवल व्याख्याता अपितु सिद्धान्त प्रवर्तक भी माने गये है। उसने अहर्गण से ग्रहानयन पद्धति आरम्भ करते हुए ज्योत्पत्ति सदृश गहन विषय को भी उपपत्ति सहित निरूपित किया। इसकी प्रतिपादन रीति अत्यन्त सरस और स्पष्ट है। उसके गणितसाधक श्लोक भी काव्यानन्द प्रदायक है। उनका समग्र प्रयास उपपत्ति विवेचन पर केन्द्रित रहा। उन्होंने अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के तृतीय व चतुर्थ भाग का वासना भाष्य भी लिखा।

सर्वप्रथम भास्कराचार्य ने ही अङ्कगणितीय क्रियाओं मे अपरिमेय राशीयों का प्रयोगः किया। चक्र विधि से आविष्कृत अनिश्चित एकजातीय वर्गसमीकरणों का व्यापक समाधान ही उसके तस्य गणितशास्त्र का सर्वोत्तम उपाय है। उन्होंने गोलाध्याय में माध्य
आकर्षण तत्त्व नाम से गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त भी प्रणीत किया। जैसा कि –
'आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत् खस्थं गुरुक्षिप्तस्वाभिमुखं स्वशक्त्या आकृष्यते तत्पततीव भाति'। भास्कराचार्य ने ही दशमलवप्रणाली का क्रमिक रूप से व्याख्या की।

मकरन्द – आचार्य मकरन्द ने पञ्चाङ्गसाधक सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ग्रन्थ १४०० शकाब्द रचित किया। इसकी आचार्य दिवाकर ने १५४९ शकाब्द में मकरन्द विवरण नामक टीका भी लिखी।

केशव एवं ग्रहकौतुक – केशव का ग्रहकौतुक करणग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह १४१८ शकाब्द में प्रणीत किया। केशव कमलाख्य ज्योतिर्विद का पुत्र और नन्दिग्राम का निवासी था । स एक महान् गणक और सफल वेधक था।

गणेश एवं ग्रहलाघव – गणेशदैवज्ञ का ग्रहलाघवकरण लोकप्रिय और बहुप्रयुक्त ग्रन्थ है। गणेश केशवदैवज्ञ के पुत्र थें। आचार्य गणेश शास्त्रज्ञ और कुशल वेधकर्ता थें। उन्होंने अपने ग्रन्थ में उन्होंने ग्रहगणित को संक्षित व सरल प्रयास किया। इसका उपक्रमवर्ष १४४२ शकाब्द माना है। ग्रहों की दृक् तुल्यता के लिये उन्होंने संयोगवियोग राशियों का वर्णन किया। ज्याचापसम्बन्ध के बिना ही ग्रहानयन, सूक्ष्मतर रीति से एकादश वर्ष के अन्तर्गत अहर्गण चक्र के माध्यम से व ध्रुवाङ्कों से मध्यमग्रह का आनयन और मानसंयोजन के लिये संयोग वियोग राशि का निर्देश गणेश का वैशिष्ट्य है। ग्रहलाघव में चतुर्दश अधिकार हैं। इस ग्रन्थ की गङ्गाधरकृत, मल्लारिकृत, विश्वनाथकृत और सीतारामकृत टीकाऐं प्रसिद्ध हैं।

ज्ञानराज और सिद्धान्तशेखर – ज्ञानराज ने वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सिद्धान्तसुन्दर संज्ञक ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ में क्षेपक आदि १४२४ शकाब्द का दिया गया। सामयिक बीजसंस्कार का साधन इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

रघुनाथ एवं सुधामञ्जरी – रघुनाथ का सुधामञ्जरी ब्राह्मपक्षीय करणग्रन्थ है। इसका आरम्भवर्ष १४८४ शकाब्द माना जाता है।

मुनीश्वर एवं सिद्धान्तसार्वभौम – सिद्धान्तसार्वभौम १५५८ शकाब्द काल में मुनीश्वर द्वारा प्रणीत सिद्धान्त ग्रन्थ है। उसने लीलावती की निसृष्टदूत नामक टीका और गणिताध्याय व गोलाध्याय की टीका भी लिखी । पाटीसार भी मुनीश्वर का ही ग्रन्थ है।

कमलाकर और सिद्धान्ततत्त्वविवेक – आचार्य कमलाकर रचित सिद्धान्ततत्त्वविवेक एक बहुचर्चित ग्रन्थ है। इसकी रचना १५८० शकाब्द में की गई। सर्वाङ्गपूर्ण इस ग्रन्थ में सिद्धान्त ज्योतिष के सभी विषय सप्रपञ्च निरूपित किये गये हैं। यह ग्रन्थ सर्वथा सौरसिद्धान्त को स्वीकार करता है। कमलाकर न केवल सूर्यसिद्धान्त का अधिवक्ता था अपितु महान् अन्वेषक भी था। सम्पात का गति के आधार पर ध्रुव नक्षत्र की अस्थिरता का प्रतिपादन, साम्प्रतिक दृश्य ध्रुवमान का ध्रुव स्थान से कुछ हटना, पूर्वोत्तर रात्रि और उनके स्थानवैभिन्य का प्रतिपादन उनके द्वारा किये आविष्कारों में उल्लेखनीय विषय है। उन्होंने तुरीय यन्त्र से वेध की एक विस्तृत विधि का निर्देश किया, त्रिप्रश्नाधिकार और ग्रहणाधिकार में अनेक नवीन रीतियों का निर्देश किया, मेघ, भूकम्प, उल्कापात, ओलावृष्टि आदि प्राकृतिक उत्पातों के कारणों का निर्देश किया। त्रिज्या का मान ३४३८ के स्थान पर ६० त्रिज्या कल्पित किया। ग्रहभोग से विषुवांश आनयन की सारिणी का भी प्रणयन किया।

नित्यानन्द और सर्वसिद्धान्तराज – १५६१ शकाब्द में नित्यानन्द ने सर्वसिद्धान्तराज की रचना की। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से दो ही अधिकार है – गणिताध्याय और गोलाध्याय। प्रथम भाग में मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रसूर्यग्रहण, शृङ्गोन्नति, भग्रहयुति और छाया संज्ञक नौ ही अधिकार है। द्वितीय भाग में भुवनकोश, गोलबन्ध और यन्त्राधिकार का निरुपण किया गया है। सभी सामान्य विषयों में उसने सावनमान का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया।

जयसिंह, जगन्नाथ और सिद्धान्तसम्राट् – जयसिंह मत्स्यदेश का अधिपति था। उसने मुख्य रूप से गणितागत ग्रहों की सूक्ष्मता से दृक्तुल्यता करने हेतु वेधकार्य करवाया। जयसिंह ने गणितागत ग्रह

और वास्तव ग्रह का ऐक्य साधन करने हेतु व वेध द्वारा गणित उपकरणों की भी शुद्धि हेतु जयपुर, इन्द्रप्रस्थ(दिल्ली), वाराणसी, मथुरा और उज्जयिनी में वेधशाला की स्थापना करवाई। वेध द्वारा गणित उपकरणों का शोधन करना इनका मुख्य प्रयोजन था। वेधशालाओं में संस्थापित कुछ यन्त्र प्रतिसंस्कृत थें व कुछ तो सर्वथा नूतन थें। यन्त्र रचना में अरबीय ज्यौतिष यन्त्रों की व उनके विद्वानों की भी सहायता ली गई।

राजा जयसिंह की सभा में अनेक विद्वान् ज्योतिषी कार्यरत थें। दक्षिण प्रदेश से आचार्य जगन्नाथ को जयसिंह ने जयपुर में ससम्मान बुलाया। जयसिंह ने ग्रहवेध के विषय में 'सिद्धान्तसम्राट्' संज्ञक ग्रन्थ १६५३ शकवर्ष जगन्नाथ पण्डित के द्वारा लिखवाया। यह एक सुविस्तृत ग्रन्थ हैं। ग्रन्थ में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में चतुर्दश प्रकरण व षोडशक्षेत्र तथा द्वितीय अध्याय में तेरह प्रकरण और पच्चीस क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त भी यन्त्र, ज्याचाप आदि, रेखागणितसाध्य, त्रिप्रश्न, मध्यम, स्पष्टाधिकार आदि का भी सप्रपञ्च निरूपण किया गया है। यहां सायन वर्षमान स्वीकार किया गया है जिसमें अयनांश की वार्षिक गति ५१.४ विकला मानी गई है। सिद्धान्त पक्ष में यह ग्रन्थ बीजसंस्कार सहित सूर्यसिद्धान्त का अनुसरण करता है।

जयसिंह की सभा में नयनसुखोपाध्याय नामक अन्य सुप्रसिद्ध विद्वान् थें। जयसिंह की आज्ञा से नयनसुखोपाध्याय ने कटरा नामक ग्रन्थ की रचना की। उस ग्रन्थ में तेरह अध्याय और उनसठ (एकोनषष्टि) क्षेत्रों का वर्णन किया गया हैं। जयसिंह की पद्धति से ग्रहों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गति का ज्ञान किया जा सकता है।

बापूदेव – बापूदेव का अपर नाम नृसिंह भी था। बापूदेव ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिसमें सरलत्रिकोणमिति एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वे १७४३ शकाब्द में उत्पन्न हुए थें। इनके लघुकाय और बृहत्काय बारह से अधिक ग्रन्थ हैं। जैसे – तत्त्वविवेकपरीक्षा, अङ्कगणित, बीजगणित, मानमन्दिरस्थ यन्त्रवर्णन, सायनवाद इत्यादि। उनके द्वार रचित गोल परिभाषा आज भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

नीलाम्बर – नीलाम्बरः १७४५ शकाब्द में उत्पन्न हुए। उन्होंने मुख्य रूप से गोलप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की। उसमें पांच अध्याय हैं – ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमिति, चापीयरेखागणित, चापीयत्रिकोणमिति और प्रश्नविषय।

केतकर और ज्योतिर्गणित – वेङ्कटेश केतकर महोदय ने १८१२ शकाब्द में ज्योतिर्गणित की

रचना की। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं, जिसमें प्रथम पञ्चाङ्ग गणित, द्वितीय ग्रहस्थान गणित, तृतीय में ग्रहण, युति, चन्द्रशृङ्गोन्नत्यादि की गणित और चतुर्थ में त्रिप्रश्नाधिकार लग्नमान आदि से संबंधित गणित का वर्णन हैं। यह ग्रन्थ पञ्चाङ्ग निर्माताओं के लिये नितान्त उपयोगी है। इसी के प्रयोग से आज भी अनेक पञ्चाङ्गों का निर्माण किया जाता है।

सुधाकर: – आचार्य सुधाकर द्विवेदी महोदय का जन्म १७८२ शकाब्द में काशी के समीप खजुरी ग्राम में हुआ था। उनकी बुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी। उनके द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें दीर्घवृत्तलक्षण, सभङ्ग विचित्रप्रश्न, वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नतिसाधन, द्युचरचार, पिण्डप्रभाकर, भाभ्रमरेखानिरुपण, धराभ्रम, ग्रहणकरण, गोलीयरेखागणित और प्रतिभाबोधक विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित गणकतरङ्गिणी ज्यौतिषशास्त्र इतिहास वर्णन करने वाला एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

२.६.१ अन्य आचार्य व उनके ग्रन्थ –

उपर्युक्त आचार्य एवं उनके ग्रन्थ कालान्तर में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक आचार्य हुए जिन्होंने सिद्धान्त विषय में ग्रन्थों की रचना की। संभवतः सैकडो वर्षों के दीर्घ इतिहास में भारत ने अनेक प्रकार की परिस्थितियों को देखा। अनेक आक्रमणों को झेला व गुलामी को सहा। इस दौरान अनेक ग्रन्थ काल कवलीत हो गये। अब जो अवशिष्ट रह गया वही हमें ज्ञात हैं। ज्योतिष की परम्परा भारत के सभी भागों में विकसित हो रही थी। सभी भागों में व्रत, पर्व, त्योहार व मुहूर्तों के ज्ञान के लिये पञ्चाङ्गो की आवश्यकता होती थीं। अतः सम्पूर्ण भारत के सभी क्षेत्रों में पञ्चाङ्गकर्ता व गणितकर्ता आचार्य विद्यमान रहे होंगे। परन्तु केवल वे ही कृतियां लम्बे समय तक जीवित रहीं जो कि अत्यन्त विलक्षण थीं व जिनकी हजारों हस्तलिखित प्रतिलिपियां पीढी दर पीढी होती रही। अथवा वे विद्वान् जो कि बडे शासक के सान्निध्य में कार्यरत रहें व उनकी रचना को राज्याश्रय में सुरक्षित रखा गया। वे ही कृतियां आज उपलब्ध हो पाती हैं। कुछ आचार्य व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम निम्न प्रकार से हैं – सामन्त चन्द्रशेखर विरचित सिद्धान्तशेखर, विजयनन्दि रचित करणतिलक, भानुभट्ट रचित रसायन तन्त्र, वरुणाचार्य रचित खण्डखाद्य टीका, दशबल रचित करणकमलमार्तण्ड, ब्रह्मदेव रचित करणप्रकाश, शतानन्द रचित भास्वती, महेश्वर रचित शेखरकरण, सोमेश्वर रचित मानसोल्लास, माधव रचित सिद्धान्तशिरोमणि, पद्मनाभ रचित यन्त्ररत्नावली, नृसिंह रचित मध्यमग्रहसिद्धि, नागेश रचित ग्रहप्रबोध, रङ्गनाथ रचित सिद्धान्तचूडामणि, कृष्ण रचित करणकौस्तुभ, रत्नकण्ठ रचित पञ्चाङ्गकौतुक, जटाधर रचित फतेशाहप्रकाश, शङ्कर रचित

करणग्रन्थ, मणिराम रचित ग्रहगणित चिन्तामणि, मथुरानाथ रचित यन्त्रराजघटना, चिन्तामणिदीक्षित रचित गोलानन्द, राघव रचित खेटकृति, शिव रचित तिथिपारिजात, दिनकर रचित ग्रहविज्ञानसारिणी, रघुनाथ रचित ज्योतिषचिन्तामणि, विनायकपाण्डुरङ्ग रचित सिद्धान्तसार इत्यादि।

२.७ सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषय –

सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत परिगणित किये जाने वाले विषयों में निम्न प्रमुख है –

गणित के तीन भेदा पाटीगणित, बीजगणित और व्यक्ताव्यक्तगणित, अहर्गण आनयन, भूपरिधि साधन, देशान्तर ज्ञान, उदयान्तर साधन, चरकाल ज्ञान, अयनांश विचार, ग्रहण विचार, भूगोल वर्णन, मध्यमाधिकार, ग्रहस्पष्टीकरण, दिग्देशकालसंज्ञक त्रिप्रश्न, छेद्यकाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुति, पातविचार, कालमान, चन्द्रश्रृङ्गोन्नति इत्यादि । सिद्धान्त ज्योतिष के विविध ग्रन्थ व ग्रन्थकारों के वर्णन के संदर्भ में भी विविध विषयों का निरूपण किया गया। सिद्धान्तज्योतिष अन्तर्गत समागत विषयों के सन्दर्भ में बृहत्संहिता ग्रन्थ में आचार्यवराहमिहिर ने दैवज्ञलक्षणवर्णन के सन्दर्भ में विस्तार से वर्णन किया कि एक दैवज्ञ को किन किन विषयों का ज्ञाता होना चाहिये, इस वर्णन के सन्दर्भ में सिद्धान्त ज्योतिष से संबंधित निम्न विषयों का उल्लेख किया –

"तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षयनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीप्राणत्रुटीत्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता। चतुर्णां च मानानां सौरसाविननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः। षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्। सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षसममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः। सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः। ग्रहणे मोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्द-वर्णादेशनामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा। प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रति-विषययोजनपरिच्छेदकुशलः।

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावालम्बकाहर्व्यासचरदलकाल-

राश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः"।

२.८ सारांश –

इस पाठ में ज्योतिष शास्त्र के अतीव विस्तृत सिद्धान्त स्कन्ध का अत्यन्त संक्षेप में परिचय प्रदान किया गया। सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा, सिद्धान्त ज्योतिष के भेदा, कालक्रम से

सिद्धान्तज्योतिष का विकास, सिद्धान्तज्योतिष के प्रमुखग्रन्थ व ग्रन्थकार और सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषयों का इस पाठ में अत्यन्त संक्षेप में निरूपण किया। ये सभी विषय अपने आप में अत्यन्त विशाल हैं। आज के समय में मुख्यतया पञ्चाङ्ग निर्माण हेतु, नूतनवेधशाला निर्माण हेतु, निर्मित वेधशालाओं के प्रयोग हेतु, गणितशास्त्र व खगोलशास्त्र के इतिहास के अध्ययन हेतु सिद्धान्त ज्योतिष की अत्यधिक उपयोगिता है। सिद्धान्त ज्योतिष के बिना किसी भी कार्य के शुभ मुहूर्त्त का ज्ञान, व्रत, पर्व, त्योहार के सही समय के ज्ञान होना संभव नहीं है अतः इस शास्त्र की आवश्यकता भारतीय संस्कृति के जीवित रहने तक बनी रहेगी। आजकल केवल मात्र इस शास्त्र का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। आज सभी प्रकार की गणित संगणक यन्त्रों के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र की जा सकती है । प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों के आधार पर विविध संगणकीय तन्त्रों (साफ्टवेयर) का निर्माण कर लिया गया है जो क्षणमात्र में ही तात्कालिक व भूत भविष्यतकालिक ग्रहों की स्थिति की सटीक गणना प्रदान कर देते है। अतः तकनीकी के प्रयोग से सिद्धान्त ज्योतिष को एक नया आयाम मिला है। गणित और खगोलशास्त्र के इतिहास पठन के सन्दर्भ में उन प्राचीन ग्रन्थों का उपयोग विश्व में आज भी होता है। विश्व में गणित का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। जब किसी राष्ट्र के मनुष्य अपने गौरवशाली इतिहास को जानते है तो उनमें राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि होती है व गौरव का अनुभव होता है। सिद्धान्त ज्योतिष की यह भारतीय विकास परम्परा भी भारत के नागरिक को गौरवान्वित होने का अवसर प्रदान करती है। पाठ के अन्त में पठनीय पुस्तकों की सूची प्रदान की गई है। जिनके अध्ययन से जिज्ञासु अध्येता इस विषय में अपने ज्ञान को और अधिक विस्तार प्रदान कर सकते हैं।

२.९ पारिभाषिक शब्दावली –

दृक्सिद्ध ग्रह एवं बीज संस्कार – सर्वप्रथम प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों के आधार पर ग्रहों की स्थिति का स्पष्टीकरण किया जाता था। इसके उपरान्त गणित से प्राप्त ग्रहों की स्थिति सही है या नहीं इसकी जांच विविध यन्त्रों में वेध द्वारा की जाती थी। यन्त्रों से वेध करने पर ग्रहों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता था। वेधयन्त्रों से साधित ग्रह को दृक्सिद्ध ग्रह कहा जाता था। यदि गणित द्वारा साधित ग्रहों की स्थिति वेधयन्त्रों द्वारा साधित ग्रहों की स्थिति के अनुसार ही प्राप्त होती थी तभी उस गणित को सही माना जाता था। और उस सिद्धान्त के आधार पर भविष्य में भविष्यतकाल हेतु की गई गणित को प्रामाणिक माना जाता था। यदि गणित से प्राप्त ग्रह स्थिति व वेधयन्त्रों से साधित ग्रहस्थिति में बार बार अन्तर प्राप्त होता था तो उस सिद्धान्त ग्रन्थ में दिये गये मानों में कुछ नये परिवर्तन की

आवशयकता होती थी, जिसे बीज संस्कार कहा जाता था। परवर्ती आचार्यों ने इसी प्रकार प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों का निरन्तर परीक्षण करते हुए संस्कार प्रदान किये।

त्रुटि मान – **"सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटीरित्यभिधीयते"** अर्थात् सूची से एक कमल के पत्ते को भेदने में जितना काल अपेक्षित होता है, वह समय त्रुटि कहलाता है। सिद्धान्त ज्योतिष में काल गणना के प्रसंग में त्रुटि को काल गणना की सबसे छोटी इकाई माना है। कपिलेश्वर शास्त्री जी ने सूर्यसिद्धान्त की टीका में विस्तृत रूप से इसका वर्णन किया। आधुनिक मान से इसका मान लगभग एक सैकण्ड का ४३,२०,०००वां भाग माना जाता है।

अव्यक्त गणित – गणित में जो राशि अज्ञात होती है, उसके लिये कुछ संकेताक्षर माना जाता है, जिस प्रकार आधुनिक समय में अंग्रेजी के x, y, z आदि अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। उससे संबंधित गणित को अव्यक्त गणित कहा गया। प्राचीन में इन संकेतों हेतु यावत्तावत् (या) तथा अन्य रंगों के संकेताक्षरों का प्रयोग किया जाता था, जैसे कालक (का), पीलक (पी), नीलक (नी), हरितक (ह) इत्यादि।

चन्द्र शृङ्गोन्नति – चन्द्र मण्डल सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है। सूर्य चन्द्र व पृथिवी की विभिन्न कोणात्मक स्थितियों के कारण पृथिवी से चन्द्र कलाओं के विभिन्न स्वरूप दिखाई देते हैं। चन्द्र बिम्ब पर पड रही सूर्य की किरणें एक अर्ध वलय का रूप बनाती है, जिसके दोनो छोर गाय के सींग के समान तीखे होते हुए फिर समाप्त हो जाते है, उसी आकृति को चन्द्र शृङ्ग कहा गया। संहिता ग्रन्थों में चन्द्र शृङ्ग की विभिन्न आकृतियों के अनुसार भी फल प्रतिपादन किया गया है। अतः सिद्धान्त ग्रन्थों में चन्द्र की शृङ्गोन्नति के साधन की विधियों का भी प्रतिपादन किया गया।

अयनांश – नाडी वृत्त व क्रान्ति वृत्त के सम्पात बिन्दु को अयन बिन्दु कहा गया। काल की गणना का आधार नाडीवृत्त है तथा राशि गणना का आधार क्रान्ति वृत्त है। सूर्य वर्ष में दो बार जब अयन बिन्दु पर पहुंचता है तब दिन रात्रि का मान समान होता है व क्रान्तिमान शून्य होता है। उसे विषुवत दिन भी कहा जाता है। पृथिवी की अयन गति के कारण यह अयन बिन्दु भी चलायमान होता है। अतः विषुवत दिन भी परिवर्तित होता रहता है। अयन बिन्दु क्रान्तिवृत्त मण्डल के जिस स्थान पर लगा होता है, वह अयन बिन्दु का स्थान होता है तथा वह बिन्दु मेषादि (राशि चक्र के आरम्भ) बिन्दु से जितने अंश दूर होता है, वह अयनांश कहलाता है। वर्तमान में अयन की वार्षिक गति लगभग ५३ विकला मानी गई है।

अभ्यास प्रश्न –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न –

(क) सिद्धान्त ज्योतिष संबंधित ग्रन्थ नहीं है –

(i) सिद्धान्तशिरोमणि (ii) सूर्यसिद्धान्त (iii) बृहज्जातक (iv) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त

(ख) पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ के रचनाकार है –

(i) वराहमिहिर (ii) भास्कराचार्य (iii) आर्यभट (iv) मुनीश्वर

(ग) पञ्चसिद्धान्तों में नहीं है –

(i) सौर सिद्धान्त (ii) पैतामह सिद्धान्त (iii) इन्द्र सिद्धान्त (iv) पौलिश सिद्धान्त

(घ) आर्यभट द्वारा प्रतिपादित कटपयसंख्याबोध सिद्धान्त के अनुसार 'कि' अक्षर से किस संख्या का बोध होता है –

(i) १०० (ii) ३०० (iii) २०० (iv) ४००

(ङ) सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का भाग नहीं है –

(i) बीजगणित (ii) लीलावती (iii) वास्तुविद्या (iv) गोलाध्यायः

(च) सिद्धान्तज्योतिष संबद्ध विषय नहीं है –

(i) काकिणीविचार (ii) दिग्ज्ञान (iii) बालारिष्टविचार (iv) अहर्गण साधन

(छ) आचार्य सुधाकरद्विवेदी द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं है –

(i) वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नतिसाधन (ii) भाभ्रमरेखानिरूपण

(iii) दीर्घवृत्तलक्षण (iv) गोल परिभाषा

(ज) जयसिंह द्वारा बनवाई गई वेधशाला कहां नहीं है –

(i) दिल्ली में (ii) कश्मीर में (iii) जयपुर में (iv) काशी में

(झ) मुञ्जाल ने अयन की वार्षिक गति कितनी मानी है –

(i) दश कला तुल्य (ii) चार कला तुल्य (iii) एक कला तुल्य

(iv) आधी कला तुल्य

(ञ) गणेशदैवज्ञ विरचित करण ग्रन्थ है –

(i) करणकुतूहल (ii) राजमृगाङ्क (iii) द्विगुणितकरण (iv) ग्रहलाघवकरण

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न –

(क) सिद्धान्त ज्योतिष के कितने भेद हैं?

(ख) ज्योतिषशास्त्र के किस भेद में युगादि से ग्रह गणना होती है?

(ग) वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ के कर्त्ता कौन है?

(घ) पृथिवी के चलन का प्रथम उदाहरण किसने प्रदान किया?

(ङ) भारतीयबीजगणित में चक्रियचतुर्भुज प्रमेय का प्रतिपादन सर्वप्रथम किसने किया?

(च) लघुमानसग्रन्थ के रचयिता कौन है?

(छ) सरलत्रिकोणमिति ग्रन्थ की रचना किसने की?

(ज) भास्कराचार्य विरचित करणग्रन्थ का क्या नाम है?

(झ) किस आचार्य ने सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?

(ञ) चापीयत्रिकोणमिति ग्रन्थ के कर्त्ता कौन है?

२.१० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर –

(क) (iii)

(ख) (i)

(ग) (iii)

(घ) (i)

(ङ) (iii)

(च) (iii)

(छ) (iv)

(ज) (ii)

(झ) (iii)

(ञ) (iv)

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर –

(क) तीन

(ख) तन्त्र भेद

(ग) आचार्य लगध

(घ) आर्यभट ने

(ङ) ब्रह्मगुप्त ने

(च) मुञ्जाल ने

(छ) बापूदेव ने

(ज) करणकुतूहल

(झ) भास्कराचार्य ने

(ञ) आचार्य नीलाम्बर झा

२.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहालविरचितः, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००३ ई.
- लगधज्योतिष, लगधाचार्य कृत, व्याख्या – डॉ.पुनीताशर्मा, प्रकाशन – नागपब्लिशर्स, दिल्ली, २००८ ई.
- प्राचीनभारतीयगणित, लेखक – बलदेव उपाध्याय, प्राचीना भारतीय गणित, विज्ञान भारती, नई दिल्ली, १९७१ ई.
- गणित का इतिहास, लेखक – बृजमोहन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तरप्रदेश, १९६५ ई.
- भारतीय ज्योतिष, लेखक – शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, हिन्दी अनुवाद – शिवनाथ झारखण्डी, प्रकाशन – उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, १९९० ई.।

२.१२ सहायक पाठ्य सामग्री –

- भारतीय ज्योतिष का इतिहास, - उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, हिन्दी भवन, लखनऊ, १९७४ ई.
- सूर्यसिद्धान्तः, श्रीकपिलेश्वरशास्त्रीविरचितः, श्रीतत्त्वामृतभाष्योपपत्तिसहितः, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८७ ई.
- ग्रहलाघवम्, श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम्, व्याख्या – डॉ.ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००८ ई.

- आर्यभटीयम्, आर्यभतटप्रणीतम्, व्याख्या – डॉ.सत्येन्द्रशर्मा, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००८ ई.
- सिद्धान्तशिरोमणिः, भास्कराचार्यविरचितः, व्याख्या – पं.सत्यदेवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०११ ई.

२.१३ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. सिद्धान्त ज्योतिष के भेदों का विस्तृत वर्णन करें।

२. आचार्य लगध व उनके कृतित्व का वर्णन करें।

३. सिद्धान्त ज्योतिष के विकास में भास्कराचार्य के योगदान का वर्णन करें।

४. राजा जयसिंह और उनके कृतित्व का वर्णन करें।

५. सिद्धान्त ज्योतिष में वर्णित विषयों का संक्षेप में विवेचन करें।

६. आचार्य ब्रह्मगुप्त का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करें।

इकाई – 3 प्रमुख स्कन्ध - संहिता

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना

३.२ उद्देश्य

३.३ संहिता स्कन्ध का परिचय

३.४ संहिता स्कन्ध का महत्त्व

३.५ संहिता स्कन्ध के प्रमुख प्राचीन आचार्य

३.६ संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार

१. नारद संहिता

२. बृहत्संहिता

३. अद्भुत सागर

४. भद्रबाहु संहिता

५. ज्योतिष दर्पण

६. टोडरानन्द

७. कादम्बिनी

३. ६. १ अन्य ग्रन्थ

३.७ संहिता स्कन्ध के मुख्य विषय –

१. सामाजिक विज्ञान (Social science)

२. भौगोलिक शास्त्र(Geography)

३. वास्तुशास्त्र तथा कला (Architecture and Fine Arts)

४. सामुद्रिक शास्त्र एवं हस्तरेखा विज्ञान (Palmestry and body language)

५. वृष्टि विज्ञान (Rainfall)

६. भूजल का ज्ञान (Art of exploring underground Water-Veins)

७. कृषि सम्बंधित विषय (Agriculture)

८. खगोल शास्त्र (Planetary movement and Eclipse)

९. आपदाऐं एवं उनके पूर्वानुमान के उपाय (disasters and their prediction methods)

१०. वृक्षायुर्वेद और पादप विज्ञान (Arbori-Horticulture and Flora)

३.८ अन्य विषय

३. ९ सारांश

३.१० पारिभाषिक शब्दावली

३.११ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

३.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

३.१३ सहायक पाठ्य सामग्री

३.१४ निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना –

नारद संहिता में वेदों के निर्मल चक्षु के रूप में ज्योतिष शास्त्र को प्रतिष्ठापित किया और इस शास्त्र के तीन मुख्य विभाग बताये –

सिद्धान्तः संहिता होरा रूपस्कन्धत्रयात्मकं।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्।। (नारदसंहिता, प्रथमोऽध्यायः,श्लोक-४)

आचार्य पराशर ने भी ज्योतिषशास्त्र को परम पुण्य शास्त्र बताते हुए इसके तीन मुख्य स्कन्ध बताये –

भगवान् परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।

त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं होरा, गणितं, संहितेति च।। (बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् ,अ-१२/६)

अतः ज्योतिषशास्त्र स्कन्धत्रयात्मक प्रसिद्ध है। प्रथम सिद्धान्त, द्वितीय संहिता और तृतीय होरा स्कन्ध। ये ही तीन विभाग ज्योतिष साहित्य में स्कन्धत्रय नाम से जाने जाते हैं। यहां स्कन्ध का अर्थ शाखा भी जान सकते है। ज्योतिष उस विशालकाय वृक्ष के समान है जिसका मूल वेद, उपनिषद, महाभारत, पुराण और तन्त्र साहित्य में विद्यमान है। सिद्धान्त, संहिता और होरा उसकी तीन विशाल शाखायें हैं। यदि गम्भीर रूप से चिन्तन किया जाय तो स्कन्धत्रयात्मक ज्योतिषरूपी विशाल वृक्ष की छाया में मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, रसायन विज्ञान और पदार्थ विज्ञान आदि अनेक विधायें परिपुष्ट होती हैं। सिद्धान्त स्कन्ध में मुख्य रूप से ग्रहगणित का वर्णन है। होरा स्कन्ध में ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति विशेष के भूत भविष्य वर्तमान से संबंधित फल का मुख्य रूप से विवेचन प्राप्त होता है। परन्तु संहिता ज्योतिष में अनेक विषयों का समावेश है, मुख्यतया समष्टिगत फलों का विवेचन किया गया है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा – **तत्कात्स्न्र्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।**

इस पाठ में संहिता स्कन्ध का विस्तृत परिचय, संहिता स्कन्ध के विभिन्न ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार, संहिता में वर्णित विविध विषयों का विवेचन किया गया हैं।

३.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- संहिता स्कन्ध का परिचय प्राप्त करेंगे।
- संहिता ज्योतिष की विकास परम्परा का प्रतिपादन करने में कुशल होंगे।

- संहिता ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करेंगे
- संहिता ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थकारों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- संहिता ज्योतिष का वैशिष्ट्य प्रतिपादन करने में कुशल होंगे।

३.३ संहिता स्कन्ध का परिचय –

संहिता शब्द का प्रयोग लाक्षणिक और शास्त्रीय भी है। 'संहित' शब्द में टाप् प्रत्यय करने पर संहिता शब्द निष्पन्न होता है। आचार्यों ने संहिता पद में बहुब्रीहि समास माना है और **'सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्या: सा'** इस प्रकार से समास विग्रह किया है। इस सामासिक विग्रह से संहिता पद का अर्थ होता है – सम्यक् हित प्रतिपादक शब्द। अत: ऐसा शास्त्र जो जन सामान्य के हितकारक अथवा लोकहितपरक विषयों का सम्यक्तया प्रतिपादन करता हो, उसे संहिता कहा जाता है। जैसे – वेद संहिता और स्मृति संहिता। संहिता शब्द का कोशग्राह्य अर्थ है – संयोग, मेलन, संग्रह इत्यादि। महर्षि पाणिनि ने 'पर: सन्निकर्ष: संहिता' सूत्र लिखा जिसके अनुसार अतिशय सामीप्य संहिता कहा जाता है। इस प्रकार के विवेचन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उन वर्णों का, शब्दों का अथवा वाक्यों का संयोग, मेलन अथवा संग्रह संहिता कहा जा सकता हैं जिनसे लोकहितकारी भावनाऐं प्रकट होती हों। शास्त्र हो या विज्ञान दोनों में ही लोकमङ्गल की भावना तो होती ही है।

ज्योतिष को शास्त्र माने चाहे विज्ञान, वह पूर्ण रूप से लोकहित साधक सिद्धान्तों से ही युक्त है। ज्योतिष शास्त्र का होरा भाग व्यक्तिमात्र के हित का चिन्तन करता है उसमें समष्टि हित का अभाव देखा जाता है। अत एव होरा को लोकहितकारक होते हुए भी संहिता नहीं कह जा सकता। परन्तु ज्योतिष शास्त्र का संहिता भाग सर्वतोभाव से समष्टि हितकारि भावनाओं से अर्थात् राष्ट्रहितकारि भावनाओं से परिपूर्ण है। धर्मसंहिता धार्मिक कृत्यों के आधार पर राष्ट्रहित के चिन्तन के तत्पर होती है। परन्तु ज्योतिष का संहिता भाग एक वैज्ञानिक आधार को स्वीकार कर प्राकृतिक तत्वों के शुभाशुभ फलों को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रहित के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

समष्टिगत फल का प्रतिपादन ही ज्योतिष के संहिता भाग का मुख्य उद्देश्य है। संहिता शास्त्र में मानव हित से संबंधित जगत के अनेक चराचर विषयों का वर्णन प्राप्त होता है। इस भाग में आन्तरिक्षीय घटनाओं के शुभाशुभ फल के साथ अन्य भी महत्त्वपूर्ण विषयों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

३.४ संहिता स्कन्ध का महत्त्व –

बृहत्संहिता आचार्य वराहमिहिर विरचित एक विलक्षण संहिता ग्रन्थ है। उसमें दैवज्ञ प्रशंसा के सन्दर्भ में निर्देश किया कि जो दैवज्ञ संहिता शास्त्र को सम्यक् रुप से जानता है, वहीं दैवचिन्तक होता है – "**संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति**"। जो दैवज्ञ गणित व होरा शास्त्र के साथ संहिता शास्त्र में भी पारंगत होता है उसकी "**सांवत्सर**" संज्ञा दी गई। सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया। सांवत्सर किसी देश, प्रदेश, जिले या नगर का शुभाशुभ फलकथन करने में समर्थ होता है, अत एव कहा गया कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को साम्वत्सर रहित देश में निवास नहीं करना चाहिये –

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।

चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-११)

सांवत्सर का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने वर्णन किया – जैसे दीप्तिरहित रात्रि अन्धकार युक्त होता है, जैसे सूर्यरहित आकाश अन्धकारयुक्त होता है उसी प्रकार दैवज्ञ विहीन राजा अन्धकार में ही भ्रमण करता है –

अप्रदीपा यथा रात्रिः अनादित्यं यथा नभः।

तथा असांवत्सरो राजा भ्रम्यत्यन्ध इवाध्वनि।।(बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-८)

जो राजा विजय की कामना करता है उसे सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र में पारंगत सांवत्सर की अभ्यर्चना कर अपने राज्य में स्थान देना चाहिये –

यः तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।

अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-१९)

सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व आचार्य वराहमिहिर ने प्रतिपादित किया। यदि कोई दैवज्ञ भविष्य में घटित होने वाली आपदा का पूर्वानुमान कर लेता है तो वह एक बृहत्तम कार्य करता है जो कि न एक हजार हाथी मिलकर कर सकते है न ही चार हजार घोडे मिलकर कर सकते हैं। जैसा कि कहा गया –

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।

करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः।। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-३८)

इस प्रकार त्रिस्कन्ध के वेत्ता दैवज्ञ की प्रशंसा करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने संहिता स्कन्ध के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया। होरा शास्त्र का ज्ञाता ज्योतिषी तो केवल एक व्यक्ति विशेष का ही फल प्रतिपादन कर सकता है परन्तु संहिता स्कन्ध में कुशल दैवज्ञ तो सम्पूर्ण समाज के कल्याण के

लिये चिन्तन करता है। अतः संहिता स्कन्ध का ज्ञाता होने पर ही किसी ज्योतिषी को दैवज्ञ की संज्ञा दी गई। आज भी संहिता ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व समाज में दिखाई देता है।

३.५ संहिता स्कन्ध के प्रमुख प्राचीन आचार्य –

आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता ग्रन्थ संहिताज्योतिष का सर्वप्रमुख और सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसका काल ४२७ शकाब्द मान जाता है। बृहत्संहिता ग्रन्थ में संहिता ज्योतिष से संबद्ध सभी विषयों का वर्णन किया गया है। पृथक शास्त्र के रूप में संहिता भाग का उदय कब हुआ इस विषय में निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में गर्ग, पराशर, असित, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, भृगु, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, मय, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि को संहिता ग्रन्थों के रचनाकर्त्ताओं के रूप में स्मरण करते हैं। आचार्य भट्टोत्पल ने वराहमिहिर विरचित सभी ग्रन्थों की टीकाऐं लिखी बृहत्संहिता ग्रन्थ की टीका लेखन के समय भट्टोत्पल ने वराहमिहिर से भी कहीं अधिक पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण किया है। उन्होंने टीका ग्रन्थ में व्यास, भानुभट्ट, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, यवन, रोम, सिद्धासन, भद्रबाहु, नन्दि, नग्नजित्, शक्र, कपिल, चाणिक्य, बलदेव, बृहद्रथ, गरुत्मान, कपिस्थल, ऋषभ, भदित्त, सवित्र, लाटदेव, हस्ताब्द, असित, अगस्त्य, द्रव्यवर्धन, विष्णुचन्द्र, इन्द्र, काश्यप, गार्ग, जीवशर्मा, गरुड, दैवल, देवस्वामी, नन्दी, नग्नजीत, नारद, पुलिशाचार्य, बादरायण, भट्टब्रह्मगुप्त, भानुभट्ट, भागुरि, भारद्वाज मुनि, मय, मयासुर, मणित्थ, माण्डव्य, यवन, यवनेश्वर, वज्रऋषि, वक्ष्यमाण, वररुचि, विष्णुगुप्त, विष्णु, विश्वकर्मा, वीरभद्र, शुक्र, समुद्र ऋषि, सत्याचार्य, सारस्वत, सिद्धसेन, सूर्य, श्रुतकीर्ति, हिरण्यगर्भ इत्यादि आचार्यों का स्मरण किया। इन आचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते हैं, केवल इनके नाम ही शेष रह गये हैं।

आज नारद संहिता, पाराशर संहिता, गर्ग संहिता, भृगु संहिता, काश्यप संहिता और वसिष्ठ संहिता बृहत्संहिता से पूर्ववर्ती संहिताओं के रूप में उपलब्ध हैं। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि वेदाङ्ग काल तक संहिताशास्त्र का पृथक् अस्तित्व नहीं था। संहिता ज्योतिष के तत्त्व विविध पुराणों में और इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। महाभारत में भी कुछ संहिता शास्त्रों की स्थिति के संकेत प्राप्त होते हैं विशेषतः व्यास संहिता की स्थिति के संसूचक वचन उपलब्ध होते हैं –

ततो इष्टेऽहनि प्राप्ते मुहूर्त्ते साधुसम्मते।
जग्राह विधिवत्पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः।। (महाभारतम् - १/११३/१६)
ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्त्तेऽभिजिदष्टमे

दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते।। (महाभारतम् - १/१२३/६)

न केवल महाभारत में अपितु वाल्मीकीय रामायण में भी संहिता से संबंधित विषयों का

उल्लेख मिलता है, यथा –

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।।(वाल्मीकीरामायणम् - १/१८/८-९)

अतः संहिता के विषयों का निर्देश प्राचीन काल से ही प्राप्त हो जाता है।

३.६ संहिता ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार –

आज के समय में उपलब्ध संहिता ग्रन्थों में बृहत्संहिता(वाराहीसंहिता), नारद संहिता, नारदीय संहिता, भृगु संहिता, वशिष्ठ संहिता, अद्भुतसागर और गर्ग संहिता के नाम मुख्यरूप से प्राप्त होते हैं, परन्तु इनमें से सर्वसुलभ रूप से लोकप्रचलन में नारद संहिता और बृहत्संहिता ही मुख्य है।

बृहत्संहिता ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध के सम्पूर्ण विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। समुपलब्ध संहिता ग्रन्थों का संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है –

१.नारद संहिता – समुपलब्ध संहिता ग्रन्थों में आर्ष रूप में प्रथम नारद संहिता उपलब्ध होती है, यद्यपि इसका प्रकाशित साम्प्रतिक स्वरूप नवीन ही लगता है। नारद संहिता 55 अध्यायों में विभक्त है। नारदसंहिता ग्रन्थ में सांवत्सरिक का लक्षण इस प्रकार वर्णित किया गया है –

त्रिस्कन्धज्ञो दर्शनीयः श्रौतस्मार्त्तक्रियापरः।
निर्दाम्भिकः सत्यवादी दैवज्ञो दैवचित्स्थिरः।।

पाराशर, गर्ग, काश्यप, वासिष्ठ आदि संहिताओं में भी नारद संहिता के समान विषय संभावित हैं, केवल निरूपण क्रम भिन्न हो सकता है। संहिताओं में भृगुसंहिता स्थूल कलेवर वाली व बहुत विषयों वाली है। सम्प्रति सुनी जा रही भृगु संहिता में अनेक जन्म कुण्डलीयों का संग्रह है जिसमें कि व्यक्ति के जन्म, परिवार व विभिन्न घटनाओं का सटीक वर्णन लिखा हुआ प्राप्त होता है। परन्तु संहिता के अन्य विषयों का इसमें अभाव है।

२. बृहत्संहिता – सम्प्रति ज्ञात पौरुषेय संहिता ग्रन्थों में बृहत्संहिता ही प्रथम ग्रन्थ हैं। बृहत्संहिता

को वाराहीसंहिता भी कहा जाता है। आचार्य वराहमिहिराचार्य इसके प्रणेता है। इसका समय 427 शकाब्द माना जाता है। यह वराहमिहिर की अन्तिम कृति मानी जाती है। इसमें कुल 106 अध्याय हैं। इस ग्रन्थ की भट्टोत्पल रचित विस्तृत टीका प्राप्त होती है। योगयात्रा, विवाहपटल, विवाहखण्ड, ढिकनिकयात्रा, ग्रहमण्डल पटल और समास संहिता आचार्य वराहमिहिर के संहिता विषयक ग्रन्थ माने जाते हैं।

बृत्संहिता से पूर्व भी संहिता विषयों पर ग्रन्थों की रचना की गई थीं। आचार्य वराहमिहिर स्वयं कहते है कि जिन कि विषयों का मैं इस बृहत्संहिता ग्रन्थ में प्रतिपादित कर रहा हूं वे मेरे द्वारा आविष्कृत नहीं है अपितु मैने केवलमात्र पूर्वाचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्ययन कर उसी ज्ञान को सार संक्षेप रूप में अपने वाक्यों में कहा हैं। वराहमिहिर ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर पूर्वाचार्य के रूप में पराशर, गर्ग, भृगु, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि का स्मरण करते हैं, किन्तु उनमें से किसी के द्वारा भी रचित संहिता ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते हैं। इनमें से वसिष्ठ संहिता की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसका प्रकाशन हो चुका है। कुछ आचार्यों का अनुमान है कि प्राचीन काल में ब्रह्मा द्वारा प्रकटीत ज्योतिष शास्त्र की बहुत सी शाखाऐं थीं। उनमें अनेक ग्रन्थों में विषयों की पुनरुक्ति व अव्यवस्थित प्रतिपादन किया गया होगा अतः मतिभ्रम के परिहार के लिये आचार्य वराहमिहिर ने सभी विषयों का सङ्ग्रह कर सार संक्षेप में बृत्संहिता ग्रन्थ की रचना की, तथा ज्योतिष के सभी विषयों को तीन भागों में विभाजित करते हुए तीनों भागों में पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की। किसी भी दो स्कन्ध के विषयों को आपस में समाहित नहीं किया, उन्हें अच्छी प्रकार से विभाजित किया।

बृत्संहिता के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस समय किस प्रकार के ग्रन्थ रहे होंगे। प्राचीन आचार्यों ने विविध विषयों पर महान् शोधकार्य किये थें, परन्तु दुःख का विषय है कि वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते हैं। और जैसा कार्य आचार्य वराहमिहिर ने किया किसी अन्य आचार्य ने नहीं। सुप्रसिद्ध 'भारतीय ज्योतिष' ग्रन्थ के रचनाकार शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने सत्य ही कहा कि वराहमिहिर के उपरान्त तो संहिता ग्रन्थों का साङ्गोपाङ्ग लेखन लुप्तप्राय हो गया। संहिता विषयों में केवल मुहूर्तखण्ड ही सम्प्रति सजीव है। मुहूर्तग्रन्थों को भी संहितास्कन्ध में ही परिगणित किया गया।

३. अद्भुतसागर – वस्तुतः अद्भुतसागर ग्रन्थ अद्भुत ही है। यह ग्रन्थ वङ्ग देश के राजा लक्ष्मण सेन ने प्रारम्भ किया और उनके पुत्र बल्लालसेन ने १०८९ शकाब्द में उसे पूर्ण करवाया। इस ग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषय हैं। इस ग्रन्थ में बृहत्संहिता से भी अधिक कई नवीन विषय भी वर्णित किये गये हैं, जिनमें मुख्य रूप से अन्तरिक्ष, भूमि व वायुमण्डल में दिखाई देने वाले अनेक अद्भुत

उत्पातों का विवेचन किया गया हैं जिनका वर्णन बृत्संहिता में भी नहीं प्राप्त होता। इस ग्रन्थ का सबसे बडा वैशिष्ट्य है कि इसमें पूर्ववर्ती ग्रन्थों के वचनों को यथारूप उद्धरित किया गया है। इस ग्रन्थ में प्राप्त होने वाले पराशर के वचनों के आधार पर जैन विश्वविद्यालय, बेंगलोर के आधुनिक विज्ञान के विद्वान् श्री आर. एन. आयङ्गर ने पाराशर संहिता के रूप में "पराशरतन्त्र" ग्रन्थ की रचना की है। पूर्ववर्ति कुछ आचार्यों नाम जिनका उल्लेख बृहत्संहिता में भी उपलब्ध नहीं है, इस ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं –

ग्रन्थेऽत्र वृद्धगर्गगर्गपराशरवशिष्ठगार्गीयान् ।
बार्हस्पत्यबृहस्पतिकठश्रुतिब्रह्मसिद्धान्तान् ।।
आथर्वणाद्भुताशितषट् त्रिंशद् ब्रह्मर्षिकृतीः।
गार्गीयमतौशनसे कालावलिसूर्यसिद्धान्तौ।।
विन्ध्यवासी-वदरायणोशनः शालिहोत्रविधुगुप्तसुश्रुतान्।
पीलुकार्यनृपपुत्रदेवलान् भार्गवीयबिजवायकाश्यपान्।। (अद्भुतसागर, उपोद्घातः, पृष्ठ-४)

इस प्रकार बृहत्संहिता के उपरान्त अद्भुतसागर ही संहिता का एक साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ प्राप्त होता है। ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सभी प्राचीन ग्रन्थ 12वें शकाब्द काल तक व उसके उपरान्त भी विद्यमान थें, और उनसे भी अधिक थें जिनका कि उल्लेख आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में किया है।

४.भद्रबाहु संहिता – ११-१२ शताब्दी काल में आचार्य भद्रबाहु ने इस ग्रन्थ की रचना की। मुख्य रूप से यह अष्टाङ्ग निमित्तों का वर्णन करने वाला ग्रन्थ है। आपदाओं के आने पूर्व दृष्ट होने वाले निमित्तों का विस्तार से विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। कुछ अति नवीन विषय भी हैं जिनका वर्णन पूर्ववर्ती संहिता ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। यह भी संहिता ज्योतिष का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

५.ज्योतिष दर्पण – गद्यपद्यात्मक यह ग्रन्थ पञ्चपल्लू संज्ञक किसी आचार्य ने १४७९ शकाब्द में लिखा। पञ्चपल्लू कण्वशाखाध्यायी वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थें। वे अपने ग्रन्थ में पैलूभटीय नामक संहिता ग्रन्थ का स्मरण करते हैं।

६.टोडरानन्द – १५७२ ईस्वी वर्ष में राजा अकबर के शासनकाल में प्रधानमन्त्री टोडरमल्ल ने विद्वानों की बहुत बडी गोष्ठी का आयोजन करवाया। उस शास्त्रचर्चा मे उसनें उस काल में समुपब्ध शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण मूल वचनों का सङ्कलन करवाया। उसके परिणामस्वरूप 23 से अधिक विषयों के समायोजन से महाभारत तुल्य "टोडरानन्द" ग्रन्थ का निर्माण हुआ। इसमें प्रत्येक भाग की सौख्य

संज्ञा दी गई। उनमें से "संहितासौख्यम्", "वास्तुसौख्यम्", "गणितसौख्यम्" इत्यादि में ज्योतिषशास्त्र संबंधित पुरातन ग्रन्थों के वचनों का उत्कृष्ट संग्रह प्राप्त होता हैं। कुछ नवीन विश्लेषकों का मत है कि इस ग्रन्थ का निर्माण राजा के सान्निध्य में मुख्य रूप दैवज्ञ नीलकण्ठ ने किया।

७.कादम्बिनी – म. म. विद्यावाचस्पति पं. श्रीमधुसूदन ओझा जी ने समुपलब्ध संहिताग्रन्थों का सूक्ष्मेक्षिकया अध्ययन कर साररूप में अत्यन्त सरल भाषा में उन विषयों का विवेचन कादम्बिनी ग्रन्थ में किया। विशेष रूप से इस ग्रन्थ में वृष्टि संबंधित फलों का विवेचन किया गया हैं। महोदय का जन्म श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन संवत् १९२३ में हुआ था।

८.बृहद्दैवज्ञरञ्जन – १९५४ शकसंवत् में काशी नरेश के आश्रित पं.रामदीन महोदय ने इस संग्रह ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में गोचर फल, फलित ज्योतिष, मुहूर्त्त शास्त्र इत्यादि से संबंधित विषयों का संकलन हैं। मुख्य रूप से इस ग्रन्थ में बृत्संहिता के वचनों को उद्धरित किया गया हैं।

१.६.१ अन्य ग्रन्थ – उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी अन्य उपलब्ध सुप्रसिद्ध संहिता ग्रन्थ हैं जिनका सम्प्रति प्रकाशन हो चुका है। उनके नाम हैं – मयूरचित्रक, मेघमाला, वनमाला, वशिष्ठ संहिता, बृहद्वास्तुमाला, अद्भुत दर्पण, शृङ्गार तरंगिणी, विद्यामाधवीय, विवेक विलास, गुरु संहिता, कृषिपाराशर, दैवज्ञकामधेनु, निमित्तशास्त्र, गृहरत्नविभूषण, जयपायड निमित्तशास्त्र इत्यादि। इनके अतिरिक्त आज भी बडी संख्या में संहिता शास्त्र से संबंधित ग्रन्थ देश और विदेश के विभिन्न पुस्तकालयों में पाण्डु ग्रन्थों के रूप में विद्यमान है व प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिनके प्रकाशन से और भी नये ज्ञान व संहिता शास्त्र के विकास की परम्परा का ज्ञान हो सकता है।

३.७ संहिता स्कन्ध के प्रमुख विषय –

जल विज्ञान (भूमिगत और आकाशस्थ), रेखाविज्ञान, वास्तु, धूमकेतू उल्का आदि का ज्ञान, शकुन शास्त्र और सामुद्रिक शास्त्र इत्यादि संहिता शास्त्र से ही उद्भूत हुए। ग्रहजनित अशुभ दोष निवारण की चिकित्सा पद्धति में सूर्यादि ग्रहों से संबद्ध माणिक्यादि रत्न धारण, विभिन्न धातूओं की भस्म से विविध रोगों का निदान इत्यादि विषय भी संहिता में समाहित हुए। इसी शास्त्र के आधार पर नक्षत्रमण्डल में ग्रहों के संचरण द्वारा इस लोक में होने वाले शुभाशुभ फलों का निरूपण इसी शास्त्र में किया गया। ज्योतिष के इसी स्कन्ध के आधार पर वायु, वृष्टि आदि का ज्ञान दैवज्ञ करते हैं।

मुहूर्त्तशास्त्र को भी संहिताशास्त्र का ही अङ्ग माना गया जिसके बिना लौकिक, वैदिक और स्मार्त कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो पाता। संहिताशास्त्र में स्थल, जल, और गगन में दिखाई देने वाले विविध उत्पातों के विवेचन व लक्षण के द्वारा तथा तात्कालिक ग्रहचार के द्वारा सुभिक्ष दुर्भिक्ष आदि

सार्वभौम शुभाशुभ फलों का प्रस्तुतीकरण होता हैं। साथ ही स्वर, मुहूर्त, शकुन, पुरुषस्त्रीलक्षण, गजतुरगलक्षण, रत्न, प्रतिमाप्रासादलक्षण आदि अनेक विशेष विषयों का प्रतिपादक संहिताशास्त्र है। यह समाज के कल्याणपथ का प्रदर्शक है। इस स्कन्ध में वर्णित सभी मुख्य विषयों के नाम केवल

बृहत्संहिता ग्रन्थ में ही प्राप्त होते हैं। जैसा कि ग्रन्थारम्भ में आचार्य वराहमिहिर ने वर्णित किया –

यत्रैते संहिता पदार्थाः। दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागम चारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगरर जोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्र श्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलरनीरालजनखञ्जन कोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरूषस्त्रीलक्षणान्य न्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्रेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभिः फलानि भवन्ति। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-२३)

अद्भुतसागरग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषयों का वर्णन है, परन्तु उसमें अनेक नवीन विषयों का भी विवेचन किया गया जिनकी चर्चा बृत्संहिता में भी चर्चा नहीं है। उसमें दिव्याश्रय, अन्तरिक्षाश्रय और भौमाश्रय संज्ञक तीन भागों में विविध उत्पातों का सोपपत्तिक वर्णन किया है व उनकी शान्ति के उपाय भी वर्णित किये है। भौमाश्रय में भूकम्प, जलाशय अग्नि, दीप, देव प्रतिमा, शक्रध्वज, वृक्ष, गृह, वातज उपस्कर, वस्त्र, उपाहन, आसन, शस्त्र, दिव्य स्त्रीपुरुषदर्शन, मानुष, पिटक, स्वप्न, कायरिष्ट, दन्त जन्म, प्रसव, सर्वशाकुन, नाना मृग, विहग, गज, अश्व, वृष, महिष, बिडाल, शकुन, शृगाल, गृहगोधिका, पिपीलिका, पतङ्ग, मशक, मक्षिक, लूता, भ्रमर, भेक,

खन्जरीट दर्शन, पोतकी, कृष्णपेचिका, वायसाद्भुतावर्त्त, मिश्रकाद्भुतावर्त्त, अद्भुतशान्त्यद्भुतावर्त्त, सद्योवर्षनिमित्ताद्भुतावर्त्त, अविरुद्धाद्भुतावर्त्त और पाकसमयाद्भुतावर्त का निरूपण किया हैं जिनमें से अनेक विषयों की चर्चा बृत्संहिता में नहीं प्राप्त होती।

संहिता के विषय अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। इसमें सम्पूर्ण देश की स्थिति, देश का शुभाशुभ फल, कृषि सम्बन्धित फल, वृष्टि सम्बन्धित फल, वाणिज्य सम्बन्धित फल, राजनीति सम्बन्धित फल और अर्थ सम्बन्धित फल का विस्तृत रुप प्रतिपादन किया गया है। इसके निर्धारण हेतु आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता में वर्णन है कि सर्वप्रथम सत्ताईस नक्षत्रों को नव खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक खण्ड में तीन तीन नक्षत्र स्थापित किये। बृहद भारत देश के भूभाग को नक्षत्रों के आधार पर विभाजित किया। जब ग्रहों का सञ्चार उन नक्षत्रों पर होता हैं तब उनसे संबंधित देशों पर उन ग्रहों का शुभाशुभ का प्रतिपादन किया गया। किस स्थान पर कब कितनी मात्रा में वृष्टि होगी? व्यापार जगत में किन वस्तुओं के मूल्यों में तेजी या मन्दी होगी? इत्यादि विषयों का विचार भी संहिता ग्रन्थों में उक्त ग्रहचार के आधार पर किया गया। संहिता ग्रन्थों में वर्णित विषयों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है –

१. सामाजिकविज्ञानम् (Social science) – संहिता ग्रन्थों में तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। उसमें वर्ण व्यवस्था, वर्ण संकर, चार आश्रम, पुनर्विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, सतीप्रथा, विवाहविच्छेद आदि विषय में वर्णन प्राप्त होता है। पारिवारिक संबंध, समाज में शिक्षा की स्थिति इत्यादि विषयों का संहिता स्कन्ध में वर्णन प्राप्त होता है। विविध प्रदेशों के निवासकर्ताओं का क्षेत्र के अनुसार, स्वरूप के अनुसार और कर्मविशेष के अनुसार नाम का वर्णन किया गया है। उससे उस समय की सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। जैसे – आभीरस, अभिसार, आदर्श, अग्निधर, श्वमुख, अश्वत्थ, अवगाण, आवर्तक, वाटधान, महाग्रीव, मत्स्य इत्यादि।

२. भौगोलिक शास्त्र (Geography) – संहिताग्रन्थों में तात्कालिक देश, प्रदेश और नगरों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। उससे तात्कालिक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान भी होता है। मुख्य सप्त पर्वतों के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। भीमरथा, चन्द्रभागा, चारुदेवी, देविका, गाम्भीरिका, गुलुहा, इक्षुमती, इरावती, कौशिकी, लौहित्य, निर्विन्ध्या, पारा, पयोष्णी, फल्गुलुका, रथाख्या, शतद्रु, शोण, ताम्रपर्णी, वेदस्मृति, वेणा, वेणुमती, विपाशा, वितस्ता इत्यादि नदीयों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। दण्डक, धर्मारण्य, महात्वी, नैमिष, नृसिंहवन, पुष्कर, वनराज्य, वनराष्ट्र, वनौघ, वसुवन इत्यादि वनों के नाम भी प्राप्त होते हैं।

३. वास्तुशास्त्र तथा कला (Architecture and Fine Arts) – भूमि चयन से प्रारम्भ कर गृहप्रवेश पर्यन्त सभी गृहवास्तु के विषय वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत समाहित होते है। वराहमिहिर ने वास्तुशास्त्र को भी संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत परिगणित किया। बृहत्संहिता में न केवल गृहवास्तु के सन्दर्भ में अपितु प्रासाद वास्तु व मन्दिर वास्तु का भी समावेश किया गया। कालान्तर में वास्तु एक पृथक् शास्त्र के रूप में स्थापित हुआ।

४. सामुद्रिक शास्त्र व हस्तरेखा विज्ञान (Palmistry and Body language) – आज के समय में हस्तरेखाओं के द्वारा फलकथन की विधि का अत्यधिक प्रचार देखा जाता है। हस्तरेखा दर्शन सामुद्रिक शास्त्र का ही एक भाग है। सामुद्रिक शास्त्र के अन्तर्गत शरीर के सभी अङ्गों के लक्षण व उनके द्वारा फलकथन किया जाता है। उनमें से भी हस्तरेखा दर्शन कालान्तर में अति प्रसिद्ध हो गया और पृथक् शास्त्ररूप में इसके ग्रन्थों की रचना होने लगी। सामुद्रिक शास्त्र का भी अन्तर्भाव संहिता शास्त्र में ही किया गया।

५.वृष्टि विज्ञान (Rainfall) – आधुनिक वैज्ञानिक सतत रूप वृष्टी के पूर्वानुमान हेतु प्रयासरत रहते हैं। परन्तु अधिक सफलता दिखाई नहीं देती। वे कुछ दिन पूर्व का ही अनुमान कर पाते हैं। प्राचीन आचार्यों ने भी वृष्टि के विषय में विस्तार से विवेचन किया और एक वर्ष पूर्व ही वृष्टि के पूर्वानुमान का प्रयास किया। वृष्टि की उत्पत्ति, वृष्टि के कारण, वृष्टि की पूर्वानुमान की विभिन्न विधियां, विभिन्न प्रकार की वृष्टि के द्वारा होने वाले फल, अतिवृष्टि अनावृष्टि जनित आपदाऐं व उनके शमन के उपाय भी संहिता स्कन्ध में वर्णित किये गये हैं।

६.भूजल का ज्ञान (Art of exploring underground Water-Veins) – आज विविध रेडियोधर्मी यन्त्रों के माध्यम से भूगर्भ में स्थित जल का ज्ञान किया जाता है, परन्तु प्राचीन समय में भी भूमिगत जल के ज्ञान हेतु यन्त्रों उपलब्ध नहीं थें। प्राचीनकाल में विविध वृक्षों की स्थिति, वल्मीक आदि कीटों के गृहदर्शन इत्यादि विधि द्वारा भूगर्भ में विद्यमान जलशिराओं का ज्ञान किया जाता था। यह वर्णन संहिता स्कन्ध के "दकार्गलाध्याय" में किया गया। मुख्यतया भूगर्भ में जल है या नहीं? यदि है तो कितनी मात्रा में? जल मधुर है अथवा लवणयुक्त? जल स्वास्थ्यवर्धक है या विषाक्त? भूगर्भ में जल कितना गहराई में है? इन सभी प्रश्नों का समाधान दकार्गलाध्याय में किया गया। आज आधुनिक यन्त्रों द्वारा भूगर्भ के स्थित जल, तैल व खनिज पदार्थों का ज्ञान किया जाता है, परन्तु प्राचीनकाल में यन्त्रों के अभाव में उनका सूक्ष्म ज्ञान केवल ज्योतिष शास्त्र के संहिता शास्त्र द्वारा ही किया जाता था।

७.कृषि सम्बंधित विषय (Agriculture) – किस प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति कब होती हैं? उनका संवर्धन किस प्रकार होता है? उन धान्यों हेतु बीजों का निर्माण कैसे किया जाय? धान्यों का संरक्षण कैसे किया जाय? धान्य कब उन्नत होते हैं तथा कब धान्य उत्पत्ति में ह्रास होता है, इन सभी विषयों का भी वर्णन संहिता शास्त्र में प्राप्त होता है।

८.खगोल शास्त्र (Planetary movement and Eclipse) – ग्रहों का संचार, अगस्त्य चार, सप्तर्षि चार, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, ग्रहों का उदयास्त, ग्रहवर्ण, ग्रहसमागम, धूमकेतू, उल्कापतन आदि खगोलीय विषयों के कारण, लक्षण और फलों का प्रतिपादन संहिता शास्त्रों में विस्तार से किया गया हैं। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने सप्तर्षि का भी चलन प्रतिपादित किया।

९.आपदाऐं एवं उनके पूर्वानुमान के उपाय (disasters and their prediction methods) – जैसी भूकम्पादि आपदाऐं आज लोक में दिखाई देती हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी ऐसी आपदाऐं आती रही हैं। प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार से आपदाओं का निरन्तर निदर्शन किया होगा और विस्तार से उनका विवेचन भी किया। विविध आपदाओं के लक्षण, कारण, पूर्वानुमान की विधियां, आपदाओं से रक्षा के उपाय और आपदाओं के शमन हेतु भी उपायों का वर्णन किया। भूकम्प के सन्दर्भ में तो आचार्य वराहमिहिर एक विशेष अध्याय ही बृहत्संहिता में प्रस्तुत कर दिया। अध्याय में भूकंपों के चार भेद बताते हुए उनका विवेचन किया गया है।

१०.वृक्षायुर्वेद और पादप विज्ञान (Arbori-Horticulture and Flora) – संहिताग्रन्थों में पादप विज्ञान का भी विस्तार से वर्णन प्राप्त होता हैं। पादपों का संरक्षण, संवर्धन और चिकित्सा कैसे हो, वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन भी संहिता स्कन्ध में प्राप्त होता है, उसकी 'वृक्षायुर्वेद' संज्ञा दी गई।

३.८ अन्य विषय –

स्वास्थ्य, रोग और औषधियां (Health, Disease and Medicine) – विविध रोग और उनके शमन हेतु उपाय (कान्दर्पिका), विविध चूर्णों के निर्माण की विधियां संहिता ग्रन्थों में वर्णित की गई हैं।

अन्नपानादि (Food and Drinks) – संहिता ग्रन्थों में खाद्यान्न और पानीय पदार्थों के विषय में भी विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। विविध धान्य, मसाले, दुग्धपदार्थ, मिष्ठान्न, विशेष व्यञ्जन, शाक, फल, मद्य आदि के विषय में चर्चा प्राप्त होती है।

वस्त्राणि आभूषणाणि च (Dress and Ornaments) – विविध वस्त्र, परिधान, वस्त्रों के वर्ण, विविध आभूषण, सज्जा वस्तूऐं (चामर छत्र) इत्यादि का वर्णन संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

सुगन्ध द्रव्य और स्नानागार की वस्तूऐं (Perfumery and toilets) – गन्ध युक्ति, गन्ध द्रव्य, तैल, मुखवास, स्नानचूर्ण, धूप, पुत्वास, मूर्धज, राग, ताम्बूल, माला इत्यादि द्रव्यों के निर्माण के प्रकार का वर्णन किया गया है।

आवश्यक गृह उपकरण (Furniture and Miscellaneous Material) – शय्या, पलंग, भद्रासन, पात्र और आवश्यक वस्तूओं के निर्माण व रख रखाव के विषय में वर्णन प्राप्त होता है।

पुष्प (Fauna) – उस काल में भारत में समुपलब्ध होने वाले विविध पुष्पों की प्रजातियों के सन्दर्भ में संहिताग्रन्थों में वर्णन प्राप्त होता है। उन पुष्पों का वैशिष्ट्य और उनकी ह्रासवृद्धि के अनुसार लोक में विविध वस्तूओं की ह्रास और वृद्धि का फल बृहत्संहिता के "कुसुमलताध्याय" में वर्णित किया गया है।

कला तथा कुटीर (Arts and Crafts) – प्राचीन भारत में विविध कलाऐं प्रसिद्ध थीं। विविध हस्तनिर्मित वस्तूओं के उद्योगों के नाम संहिता ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। एक विशेष कार्य करने वाले समुदाय की भी विशेष संज्ञाऐं प्राप्त होती है।

अर्थशास्त्र (Trade) – कुछ वस्तु प्रदान करते हुए अन्य वस्तु का लाभ कैसे हो, अर्थ का विनिमय और व्यापार कैसे करना चाहिये। इन सभी की मानक प्रकिया का वर्णन भी संहिता शास्त्र का विषय है।

आभूषण विज्ञान (Jewel Industry) – विविध आभूषण, उनके निर्माण की प्रक्रिया, उनके धारण की विधि, उनकी देश के विभिन्न क्षेत्रों में समुपलब्धता और विशेष समुदाय के साथ उनकी संबद्धता का वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के रत्न, उनका वैशिष्ट्य, लक्षण और उनकी प्राप्ति के स्थान का वर्णन किया गया है।

मापन विज्ञान (Weights and Measurements) – वस्तूओं के भार मापन के और वस्त्रादि के दैर्घ्य मापन के सिद्धान्त, मापक वस्तूऐं, उनके द्वारा मापन की प्रकिया का भी वर्णन संहिता स्कन्ध में प्राप्त होता है।

मुद्रा विनिमय (Coinage) – मुद्रा के विविध प्रकार, मुद्रा निर्माण हेतु प्रयुक्त धातुऐं, मुद्रा टङ्कण की पद्धतियां, मुद्राओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया और मुद्रारूप में प्रयुक्त होने वाली विविध वस्तूओं का वर्णन संहिता स्कन्ध में किया गया है।

संगीत शास्त्र और चित्र शास्त्र (Sculpture, Music, Painting) – संगीत शास्त्र, मूर्तिकला शास्त्र और चित्रकला से संबंधित विविध विषयों का संहिता शास्त्र में वर्णन किया गया हैं।

दर्शन शास्त्र (Philosophy) – ज्योतिषशास्त्र का मूल दर्शनशास्त्र में ही विद्यमान है। संहिता स्कन्ध में दर्नशास्त्र के भी अनेक विषयों का वर्णन किया गया हैं। जैसे – कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, सृष्टि उत्पत्ति इत्यादि

धर्मशास्त्र (Religion) – धर्म द्वारा विहित कर्तव्याकर्तव्य का बोधक शास्त्र "धर्मशास्त्र" कहा जाता है। धर्मशास्त्र के भी अनेक विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत वर्णित हैं।

न्याय शास्त्र (Law) – विधिविरुद्ध कर्मों का सम्पादन करने वाले व्यक्ति हेतु दण्ड का विधान किया गया। दण्ड का स्वरूप, दण्ड की प्रक्रिया इत्यादि न्याय संबद्ध विषयों का संहिताशास्त्र में वर्णन किया गया।

३. ९ सारांश

वैदिक काल में याग को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रिया माना गया। और उन वैदिक यागों का सम्पादन एक निश्चित काल में ग्रह नक्षत्रों की विशेष स्थिति में किया जाता था, जो कि मुहूर्त्त शास्त्र का विषय है। यागों के सम्पादन हेतु कुण्ड मण्डप की सिद्धि हेतु माप व निर्माण विधान का वर्णन वास्तुशास्त्र का विषय है। मुहूर्त व वास्तुदोनों ही संहिता स्कन्ध में समाहित है, अतः संहिता स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का प्राचीनतम स्कन्ध माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र का यह स्कन्ध समष्टिहितकारि भावनाओं से अर्थात् राष्ट्रहितकारि भावनाओं से परिपूर्ण है। किसी शास्त्र के ज्ञान के लिये उस शास्त्र के प्रमुख आचार्या व मुख्य विषयों का ज्ञान आवश्यक होता है। इस स्कन्ध में विषयों का अत्यन्त विस्तार है। यह पाठ केवल परिचय मात्र ही है। इस पाठ में संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थ, प्रमुख आचार्य, प्रमुख ग्रन्थ और प्रमुख विषयों का संक्षेप में वर्णन किया गया।

३.१० पारिभाषिक शब्दावली

दैवचिन्तक – "पूर्व जन्मकृतं कर्म तद्देवमिति कथ्यते" शास्त्र कथन के अनुसार पूर्वजन्मार्जित कर्मों को दैव कहा जाता है। अथवा जो नियति परमात्मा के द्वारा तय है वह भी 'दैव' कहलाती है। जो व्यक्ति दैव के विषय में चिन्तन करता है। उसके अनुसार सम्भावित घटनाओं का निदर्शन करता है और शुभाशुभ फलों का विवेचन करता है।

सांवत्सर – मुख्य रूप से आचार्य वराहमिहिर ने दैवज्ञ हेतु "सांवत्सर" शब्द का प्रयोग किया। जो

ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों का ज्ञाता हो उसे ही दैवज्ञ अथवा सांवत्सर कहा गया। साथ ही एक अच्छे दैवज्ञ के सभी लक्षणों व गुणों का आचार्य वराहमिहिर ने विस्तार से प्रतिपादन भी किया।

उत्पात – "प्रकृतेरन्यथोत्पातः" जो घटना प्रकृति से भिन्न व विचित्र दिखाई देती है, उसकी उत्पात संज्ञा की गई। उत्पातों को भी तीन भागों में बांटा गया – १. दिव्य २. भौम और ३. आन्तरिक्ष। जो उत्पात आकाश मण्डल में दिखाई दिये उन्हें दिव्य उत्पात कहा, जैसे धूमकेतू, ग्रहों का वर्ण परिवर्तन, ग्रहण इत्यादि। जो विचित्र घटनाऐं भूमि पर दिखाई दीं उन्हें भौमिक उत्पात कहा, जैसे – भूकम्प, नदीयों का अचानक सूख जाना, वृक्ष का अचानक सूख जाना, मन्दिर में मूर्तियों का खिसकना, हसना या रोना, पशु पक्षियों का विचित्र व्यवहार इत्यादि। और वायुमण्डल में जो विचित्र घटनाऐं दिखाई दीं उन्हें आन्तरिक्ष उत्पात कहा गया। जैसे उल्कापात, विद्युत, प्रचण्ड वात, मेघों की विचित्र आकृति आदि।

दकार्गल – भारत में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां अत्यल्प वृष्टि होती है, वहां के निवासी कुओं, बावडी के भूमिगत स्रोतों पर ही आश्रित रहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने प्रतिपादित किया कि जिस प्रकार शरीर में रक्त वाहिनियों का जाल होता है उसी प्रकार भूमि में भी जल की अनेक शिराओं का जंजाल होता है, व अनेक स्थलों पर उन शिराओं के जल का भूमि में एकत्रिकरण भी होता रहता है। जल के उन भूमिगत भण्डारों का ज्ञान जिस विधि से होता था, उसे दकार्गल कहा गया।

वृक्षायुर्वेद – वृक्षायुर्वेद अर्थात् 'वृक्षों का चिकित्साशास्त्र'। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर विविध रोगों से ग्रस्त होता है उसी प्रकार से वृक्षों को भी अनेक प्रकार के रोग होते हैं। उनके उपचार की विधियों का वर्णन वृक्षायुर्वेद में किया गया। यदि किसी वृक्ष को एक स्थान से हटाकर अन्य स्थाप प्रत्यारोपित करना हो तो उसे किस प्रकार से यथास्थिति(जिसे उसके पत्ते भी उसी स्थिति में रहें) स्थानान्तरित किया जाय, उसका भी वर्णन संहिता ग्रन्थों में किया। कुछ वृक्षों के बीजों का अंकुरण कठिनाई से होता है, अतः उनके बीजों को तैयार करने की विधियां भी विस्तार से वर्णित की गई।

निमित्त – वे लक्षण जो भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के सूचक होते हैं, उन्हें निमित्त कहा गया। जैसे – पशु पक्षियों का विचित्र व्यवहार, वायु, विद्युत, ग्रहण इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न

(क) ज्योतिष शास्त्र के कितने स्कन्ध हैं –

(i) तीन (ii) पांच (iii) दस (iv) सात

(ख) ज्योतिष शास्त्र का स्कन्ध नहीं है –

(i) होरा (ii) संहिता (iii) साहित्य (iv) सिद्धान्त

(ग) संहितापारग कौन होता है –

(i) नक्षत्रकसूचक (ii) दैवचिन्तक (iii) योगी (iv) वेदान्ती

(घ) संहिता स्कन्ध से संबद्ध ग्रन्थ नहीं है –

(i) बृहत्संहिता (ii) भद्रबाहुसंहिता (iii) वेदान्तसार (iv) कादम्बिनी

(ङ) बृहत्संहिता ग्रन्थ के कर्ता है –

(i) नारायण दैवज्ञ (ii) आचार्य वराहमिहिर (iii) नारद (iv) वसिष्ठ

(च) संहिता संबद्ध विषय नहीं है –

(i) सामुद्रिकशास्त्र (ii) वास्तुशास्त्र (iii) ब्रह्मज्ञान (iv) दकार्गल

(छ) अद्भुतसागर ग्रन्थ के कर्ता है –

(i) आचार्य वराहमिहिर (ii) नारायण दैवज्ञ (iii) वसिष्ठ (iv) बल्लालसेन

(ज) कादम्बिनी ग्रन्थ के रचयिता है –

(i) वसिष्ठ (ii) पं.श्रीमधुसूदन ओझा (iii) आचार्य वराहमिहिर (iv) बल्लालसेन

(झ) भद्रबाहु संहिता ग्रन्थ के रचयिता है –

(i) नारायण दैवज्ञ (ii) आचार्य भद्रबाहु (iii) आचार्य वराहमिहिर (iv) बल्लालसेन

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न –

(क) ज्योतिष शास्त्र का प्राचीनतम स्कन्ध कौनसा है?

(ख) ज्योतिषशास्त्र के किस स्कन्ध में गणित से संबद्ध विषयों का वर्णन है?

(ग) संहिता स्कन्ध का सर्वप्रमुख ग्रन्थ कौनसा है?

(घ) संहिता स्कन्ध में वास्तुशास्त्र का अन्तर्भाव होता है या नहीं?

(ङ) बृहत्संहिता ग्रन्थ में कितने अध्याय हैं?

(च) "टोडरानन्द" ग्रन्थ का रचनाकार कौन है?

(छ) संहिताशास्त्र में वृष्टि संबद्ध विषयों का वर्णन है या नहीं?

(ज) सामुद्रिकशास्त्र का संहितास्कन्ध में अन्तर्भाव है, सत्य अथवा असत्य?

(झ) भूजल का वर्णन संहिता शास्त्रों में किस अध्याय में किया गया है?

(ञ) वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन किस नाम से किया गया है?

३.११ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नानों के उत्तर –

(क) (i)

(ख) (iii)

(ग) (ii)

(घ) (iii)

(ङ) (ii)

(च) (iii)

(छ) (iv)

(ज) (ii)

(झ) (ii)

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर –

(क) संहिता

(ख) सिद्धान्त स्कन्ध में

(ग) बृहत्संहिता

(घ) है

(ङ) 106 अध्याय

(च) राजा टोडरमल्ल

(छ) है

(ज) सत्य

(झ) दकार्गलाध्याय में

(ञ) वृक्षायुर्वेद अध्याय

३.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अद्भुतसागरः, श्रीमद्बल्लासेनदेवप्रणीत, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००६
- नारदसंहिता, नारदमहामुनिप्रणीता, चौखम्बा संस्कृत भवन,वाराणसी, संवत् २०६५

- बृहत्संहिता, वराहमिहिरविरचित, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, २००९
- बृहत्संहिता (भाग१ व २), आचार्य वराहमिहिर, व्याख्या – नागेन्द्र पाण्डेय, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, २००२
- बृहत्संहिता, वराहमिहिरविरचिता, भट्टोत्पलटीकासहिता, व्याख्याकारः- अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९९७

३.१३ सहायक पाठ्य सामग्री

- मयूरचित्रकम्, देवर्षि नारद विरचितम् , चौखंभा संस्कृत भवन, वाराणसी, संवत २०६५
- वसंतराजशाकुनम्, भट्टवसंतराजविरचितं, टीका – भानुचन्द्रगणि, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् -१९९७
- वशिष्ठसंहिता, ब्रह्मर्षिवृद्धवशिष्ठविरचिता, चौखम्बा संस्कृत भवन,वाराणसी, संवत् २०६५
- India as seen in The Brhatsamhita of Varahamihira, Ajay Mitra Shastri, Motilal Banarasidas, 1969

३.१४ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।

२. संहिता शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थकारों का परिचय प्रदान करें।

३. संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।

४. संहिता स्कन्ध के प्रमुख विषयों का विस्तार से वर्णन करें।

५. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संहिता शास्त्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

इकाई - 4 प्रमुख स्कन्ध - होरा

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना

४.२ उद्देश्य

४.३ होरा स्कन्ध का परिचय

४.३.१ होराशास्त्र का वैशिष्ट्य

४.३.२ होराशास्त्र के विभाग

४.४ होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार

४.५ होराशास्त्र के प्रमुख विषय

४.५.१. लग्नादि द्वादश भावों का परिचय

४.५.२ ग्रहयोग परिचय व अन्य विषय

४.६ अप्रकाशित व अनुपलब्ध होरा ग्रन्थ

अभ्यास प्रश्न

४.७ सारांश

४.८ पारिभाषिक शब्दावली

४.९ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

४.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

४.११ सहायक पाठ्य सामग्री

४.१२ निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना -

त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र का होरास्कन्ध व्यक्तिविशेष का फलकथन करता है। अत एव आधुनिक काल में इसी स्कन्ध का सर्वाधिक प्रचार दिखाई देता है। आज के समय में साधारणतया लोग ज्योतिषशास्त्र शब्द से केवलमात्र फलित ज्योतिष को ही जानते हैं, परन्तु ज्योतिषशास्त्र फलित ज्योतिष से इतर भी अनेक विषयों का समावेश है। सामान्य जन को तो संहिता व सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय भी नहीं है। होरा स्कन्ध के अन्तर्गत मुख्य रूप से जातक ताजिक प्रश्न आदि विषयों का समावेश है। होराशास्त्र जन्मकाल से प्रारम्भ कर मृत्यु पर्यन्त सभी शुभाशुभ विषयों का चिन्तन किया जाता है। इस पाठ में होराशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है।

४.२ उद्देश्य –

इस पाठ के अध्ययन से आप –

- ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध का परिचय प्रदान करने में समक्ष होंगे।
- होराशास्त्र का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करने में कुशल होंगे।
- होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों व ग्रन्थकारों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- होराशास्त्र में वर्णित मुख्य विषयों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- होराशास्त्र के अनुपलब्ध व अप्रकाशित ग्रन्थों का भी परिचय प्राप्त करेंगे।

४.३ होराशास्त्र का सामान्य परिचय -

कालवाचक अहोरात्र शब्द के आदि व अन्तिम अक्षर के लोप से होरा शब्द की निष्पत्ति होती है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक में लिखा - **''होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्''**। 'होरा' शब्द से लग्न तथा राशि के आधे भाग का ज्ञान होता है। होरा संबधित शास्त्र होराशास्त्र कहा जाता है। इस होराशास्त्र में किसी भी व्यक्ति जन्मकुण्डली का निर्माण कर द्वादश भावों व राशियों में स्थित ग्रहों की स्थिति, उनके बलाबल, दशा व अन्तरदशा का ज्ञान कर सुख-दुःख, इष्ट-अनिष्ट, उन्नति-अवनति, भाग्योदय आदि मानव जीवन में घटित होने वाली सभी घटनाओं व विषयों का ज्ञान किया जाता है। जैसा कि आचार्य भट्टोत्पल ने कहा है –

'प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चियते सा होरा'।

जातक के जन्मपत्रिका के माध्यम से पूर्वजन्म में किये प्रारब्ध कर्मों के आधार पर जातक के इस जन्म में होने वाले शुभाशुभ फल का ज्ञान किया जाता है। अतः शुभाशुभ कर्मों के फल का सूचक शास्त्र होराशास्त्र को कहा गया। सिद्धान्तशिरोमणि के वासनाभाष्य में कहा गया - **'जातकशास्त्रं प्रारब्धर्मविपाकव्यञ्जकम्'।**

४.३.१ होराशास्त्र का वैशिष्ट्य -

'अभिधेयं तु जगतः शुभाशुभनिरूपणम्' महर्षि नारद के इस वचन से सिद्ध होता है कि इस जगत में प्राणिमात्र के शुभाशुभ निरूपण करना ही होराशास्त्र का मुख्य प्रयोजन है। होराशास्त्र मानवजीवन का पथप्रदर्शक है। जन्मकुण्डली के आधार पर द्वादश भावों के शुभाशुभ फल का विवेचन करना होराशास्त्र का प्रधान विषय है। लग्न के माध्यम से राशिचक्र का द्वादश भावों में विभाजन किया जाता है। उन ग्रहों के शुभाशुभ गुणों के आधार पर व्यक्ति के शुभाशुभ फल का कथन किया जाता है। जन्म कुण्डली मानव के पूर्वजन्मों में अर्जित कर्मों का मूर्त्तिमान रूप होती है। जैसे एक विशाल वटवृक्ष का सूक्ष्म रूप से समावेश उसके बीजाङ्कुरण में होता है उसी तरह प्रत्येक मानव के पूर्व जन्म जन्मान्तर में किये गये कर्मों का अंकन जन्मकुण्डली में होता है, होराशास्त्र उन्हीं पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल को प्रकट करता है। जैसा कि कहा है -

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

होराशास्त्र में जातक का शुभाशुभ फलसम्बन्धि विचार सूक्ष्मतया किया जाता है। होराशास्त्र जीवन में चल रहे समस्त घटनाक्रम का यथार्थ रूप से ज्ञान करवाता है। यद्यपि ज्योतिषशास्त्र मानव जीवन के विविध पक्षों के ज्ञान के अनेक मार्ग है तथापि जैसा ज्ञान होराशास्त्र द्वारा होता है वैसा अन्य किसी शास्त्र से संभव नहीं है। होराशास्त्र दैवज्ञ को ऐसी दिव्यदृष्टि प्रदान करता है जिससे वह मनुष्य के ललाट पर विधाता द्वारा लिखित अक्षरमालिका को भी पढने में समर्थ हो जाता है। जैसा कि शास्त्र वचन है -

विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिकाम्।
दैवज्ञस्तां पठेद् व्यक्तं होरानिर्मलचक्षुषा।।

यह होराशास्त्र मनुष्य के नर मस्तक पर लिखित भाग्यलेख का प्रकाशन ठीक उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि अन्धकार से आवृत घर में स्थित दीपक वस्त्रादि पदार्थों का प्रकाशन करता है। जन्मकुण्डली के आधार पर शुभाशुभ दशान्तर्दशा आदि का ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुकूल वाणिज्य आदि कर्मों का, शुभ समय में यात्रा, विद्यारम्भ, धनादि मनोरथों की सिद्धि को जाना जा सकता है।

यह होराशास्त्र मनुष्यों को धनार्जन सहायता करता है, समुद्र रूपी विपत्ति में नौका और यात्रा के समय एक अच्छे सहयोगी मन्त्री के समान कार्य करता है। इस प्रकार अर्थार्जन में सहायक, विपत्ति के समय सहायक, सर्वकल्याणकारक लोकोपकारक जातकशास्त्र के अतिरिक्त कोई और शास्त्र नहीं है। जैसा कि सारावली ग्रन्थ में आचार्य कल्याण वर्मा ने कहा -

अर्थार्जने सहाय पुरूषाणामापदर्णवे पोतः।
यात्रसमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः।।

होराशास्त्र में जो भी फल प्रतिपादित किया जाता है वह पूर्वकृत कर्मों का परिपाक ही है। होराशास्त्र के अतिरिक्त किसी भी अन्य शास्त्र से कर्म के विषय में इस प्रकार से यथार्थज्ञान प्राप्त नहीं होता है।अतः इसका प्रयोग स्वतः सिद्ध ही है।

होराशास्त्र का मानवजीवन में अत्यधिक महत्व उपयोगिता है। सभी व्यक्ति अपना भविष्य जानने में सर्वदा उत्सुक होते हैं। इसी कारण ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध का सर्वाधिक प्रचार दिखाई देता है। यह स्कन्ध शिशु के जन्म से मरण पर्यन्त सभी शुभाशुभ फलों को प्रकट करता है। यदि कोई दैवज्ञ किसी मनुष्य का उचित प्रकार से जन्मपत्र निर्मित करता है तो वह निश्चित रूप से उस मनुष्य के गुणों व प्रकृति व जीवन में घटित होने घटनाओं को सूक्ष्म रूप से जान सकता है। विधात्ता के अतिरिक्त कुशल दैवज्ञ ही यह कार्य कर सकता है। इस प्रकार जातक होराशास्त्र के माध्यम से अपने जीवन समस्त घटनाओं का ज्ञान कर सकता है। ग्रह नक्षत्रादि जनित दोष अरिष्टफल के शमनार्थ होरा शास्त्र भूत-भविष्य-वर्तमानकालिक घटनाक्रम का परिचय प्रदान कर सही दिशा में मनुष्य को अपने कर्म में प्रवृत्त करता है अतः होराशास्त्र का वैशिष्ट्य सार्वदेशिक सार्वभौमिक व सार्वकालिक है।

होराशास्त्र में न केवल ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति के द्वारा मानव जीवन पर पडने वाले शुभाशुभ प्रभाव का विवेचन किया गया है अपितु अशुभ ग्रहों शान्ति के व निर्बलग्रहों की पुष्टि के उपायों का भी सम्यक रूप से निरूपण किया गया है। ग्रहों के अशुभ प्रभाव की शान्ति व निर्बल ग्रहों

के प्रभाव को पुष्ट करने हेतु मन्त्र प्रयोग, रत्न धारण, दान, औषधि स्नान इत्यादि उपायों का भी वर्णन होराग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस प्रकार भविष्य में सम्भावित घटनाओं का ज्ञान कर मन्त्र, रत्नधारण, औषधि स्नान इत्यादि अनुष्ठानों द्वारा अशुभ प्रभावों निराकरण भी होराशास्त्र द्वारा किया जाता है।

४.३.२ होराशास्त्र के विभाग – आचार्यों ने होराशास्त्र को पांच भागों में विभक्त किया है – जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न और स्वप्न। उनमें भी जातक भाग का प्राधान्य अधिक है अतः होराशास्त्र 'जातक' शब्द से भी जाना जाता है। जैसा कि आचार्य कल्याणवर्मा ने कहा -

''जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिह कीर्त्यते होरा।
अथवा दैवविमर्शनपर्यायः खल्वयं शब्दः।।''

जहां वर्षप्रवेशकालिक ग्रह-नक्षत्र-तिथि-राश्यादि के आधार पर फलादेश किया जाता है वह भाग ताजिक कहलाया। ताजिक भाग में मुख्य रूप से वर्षफल विचार किया जाता है। प्रश्न के समय फेकें गये पाशों के आधार पर फल कथन को रमल के अन्तर्गत माना गया। व्यक्ति के प्रश्न का तत्काल प्रश्नाक्षर अथवा प्रश्नकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार फलकथन किया जाय वह प्रश्नशास्त्र कहलाया। स्वप्न के विवेचन से शुभाशुभ फल का निरूपण स्वप्नशास्त्र के अन्तर्गत समाहित हुआ। इन ताजिक रमल प्रश्न व स्वप्न पद्धतियों में फल प्रतिपादन हेतु जन्म लग्न कुण्डली की आवश्यकता नहीं होती। इन सभी के ग्रन्थों की भी भिन्न रूप से रचना की गई। अतः जातक शास्त्र ही होराशास्त्र के मुख्य अङ्ग के रूप में माना गया। अन्य ताजिकादि को तो कालान्तर में पृथक् शास्त्र के रूप में ही परिगणित किया गया। अतः इस पाठ में आप मुख्य रूप से जातकशास्त्र के विषय में ही ज्ञान प्राप्त करेंगे। अब होराशास्त्र अथवा जातक शास्त्र के प्रमुख आचार्य तथा उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों के विषय में वर्णन किया जाता है।

४.४ होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार -

लग्नादि द्वादश भाव व उनमें स्थित राशि व ग्रहों की स्थिति के आधार पर फलादेश की प्रक्रिया कब प्रारम्भ हुई इसका कोई निश्चित काल तो ज्ञात नहीं है परन्तु यह प्रक्रिया नितान्त प्राचीन है ऐसा शास्त्रों के अवलोकन से ज्ञात होता है। वाजसनेयी संहिता में नक्षत्रदर्श का (30/10) और गणक का (30/20) उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार से छान्दोग्योपनिषद में भी (7/1/2, 7/7/1) नक्षत्रविद्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

विविध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि नारद कश्यप वसिष्ठ पराशर भृगु आदि आचार्यों ने

जातकशास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन किया था। आज भी पाराशर भृगु जैमिनी प्रणीत कुछ फलितज्योतिष के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं परन्तु उनकी रचनाशैली व विषया नवीन है लगते है। पौरूषेय ग्रन्थों में वराहमिहिर रचित बृहज्जातक, लघुजातक, योगयात्रा, कल्याणवर्मा रचित सारावली, केशव रचित जातकपद्धति, गणेशदैवज्ञ का जातकालङ्कार, वैद्यनाथ का जातकपारिजात, ढुण्डिराज का जातकाभरण, जीवनाथ का भावकुतूहल और बलभद्र रचित होरारत्न आदि कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अब उन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते है।

1. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र -

बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पराशर मुनि द्वारा विरचित एक प्रसिद्ध होराग्रन्थ है। पराशर व मैत्रेय के संवाद रूप में यह ग्रन्थ पश्चाद्वर्ति किसी दैवज्ञ ने सङ्ग्रह कर लिखा। मुम्बई तथा काशी से प्रकाशित संस्करणों में महान् पाठभेद दिखाई देता है। इस ग्रन्थ में 98 अध्याय हैं। ग्रन्थ का काशी संस्करण सीताराम दैवज्ञ ने 1850 शकाब्द में सम्पादित कर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में सभी जातकसम्बद्ध विषयों का निरूपण किया गया है।

पाराशरहोराशास्त्र का लघुरूप व मध्यमरूप भी प्रकाशित हुआ। इसका लघुरूप 'लघुपाराशरी' या 'उडुदायप्रदीप' कहलाता है। पाराशरहोराशास्त्र के वचनों के साररूप से लघुपाराशरी ग्रन्थ की रचना हुई। जैसा कि ग्रन्थारम्भ में कहा -

वयं पाराशरी होरामनुसृत्य यथामतिः।
उडुदायप्रदीपपाख्यं कुर्मो देवविदां मुदे।।

लघुपाराशरी ग्रन्थे में संज्ञाध्याय, योगाध्याय, आयुर्विचाराध्याय, दशाफलाध्याय और मिश्रकाध्याय संज्ञक पांच अध्याय और 45 श्लोक हैं। यह ग्रन्थ किसने कब लिखा यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इस ग्रन्थ में मुख्यतया ग्रहों के दशाफल का वर्णन किया गया है। आज भी ज्योतिषी इस ग्रन्थ में वर्णित नियमों के आधार पर ही दशाफल करते हैं। वराहमिहिर ने अपने बृहज्जातक ग्रन्थ में 'शक्तिपूर्व' नाम से पराशर का स्मरण किया है।

2. भृगु संहिता -

ऋषि भृगु रचित ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों के प्रवक्ता थें परन्तु आज उनकी संहिता का फलित भाग ही उपलब्ध होता है। किंवन्दन्ती है कि उनकी संहिता में करीब साढे सात करोड (7,46,48,600) जन्मकुण्डलियां वर्णित की गई व प्रति कुण्डली में 60 से अधिक श्लोकों के द्वारा

फलादेश भी बताया गया, परन्तु वराहमिहिर कल्याणवर्मा भट्टोत्पला आदि ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी इस बृहत्काय ग्रन्थ के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। न हि इतिहास में कहीं ऐसी गुरूकुल पद्धति सुनी गई जिसमें ऐसे ग्रन्थ के निर्माण का उल्लेख हो। इस विषय में इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि यह आर्ष ग्रन्थ प्रायः दाक्षिणात्य प्रदेश में प्रचलित था जिसका उत्तर भारत बहुत काल के उपरान्त ज्ञान हुआ।

3. वराहमिहिरादि आचार्यों द्वारा उद्धरित ग्रन्थ एवं आचार्य -

वराहमिहिर भट्टोत्पल कल्याणवर्मा आदि आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में विविध पूर्ववर्ती आचार्यो के वचन व नाम च उद्धरित किये है। उनके ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते है। जिनके नाम है - गर्गसंहिता, मयहोराशास्त्र, यवनहोराशास्त्र, माणित्थहोराशास्त्र, जैवहोराशास्त्र, विष्णुगुप्तहोराशास्त्र, देवस्वामीहोराशास्त्र, सिद्धसेनहोराशास्त्र, यवनेश्वरहोराशास्त्र, बादरायणहोराशास्त्र आदि। अब समुपलब्ध होरा ग्रन्थों का परिचय प्रदान किया जाता है

4. जैमिनीसूत्रम् - जैमिनिसूत्र ग्रन्थ आज उपलब्ध होता है। गद्यात्मक सूत्ररूप में रचित इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। वराहमिहिर कल्याणवर्मा भट्टोत्पल आदि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है परन्तु ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों में जैमिनिऋषि का नाम प्राप्त होता है। किन्तु इसकी शैली सूत्रमयी प्राचीन है। फलित पद्धति भी भिन्न है। यह ग्रन्थ शकोदय काल में रचित है। इस ग्रन्थ की अनेक टीकाऐं उपलब्ध होती है। इस ग्रन्थ का मलावार वा दाक्षिणात्य प्रदेश में विशेष प्रचार देखा गया है।

5. बृहज्जातकम् -

वस्तुतः बृहज्जातक पौरूषेय होरा ग्रन्थों में प्रथम माना गया है। इस ग्रन्थ में सताईस 27 अध्याय हैं व अन्तिम उपसंहाराध्याय को अट्ठाईसवाँ माना गया है। विषय की संक्षिप्तता, स्पष्टता सरलतापूर्वक प्रस्तुति के साथ उकृष्ट काव्यात्मकता वराहमिहिर के इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। अभिव्यक्ति का सौष्ठव आचार्य वराहमिहिर का विशेष गुण है। जैसा कि कहा है -

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।
आचार्यकत्वञ्च बहुघ्नताया येकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्।।

आचार्य वराहमिहिर ने प्राचीन आचार्यों की जहां कहीं भी त्रुटी देखी उनका निर्भीक रूप से संकेत किया, यह उनका एक विशेष गुण है। यथा-

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।

चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञसितौ भवतः कथम्।।

इस ग्रन्थ की अनेक टीकाऐं लिखी गई। उनमें से भट्टोत्पल की विवृति सर्वाधिक प्रामाणिक व प्राचीन है। इसी ग्रन्थ के बलभद्र महीधर आदि आचार्यों ने भी टीका ग्रन्थ प्रणीत लिखे है। इस ग्रन्थ की सुबोधिनि टीका भी जानकारी मिलती है।

6. लघुजातकम् -

लघुजातक वराहमिहिर रचित बृहज्जातक का सार संक्षेप रूप ग्रन्थ है। जैसा कि –

होराशास्त्रं वृतैर्मया निबद्धं निरीक्ष्यं शास्त्राणि।

यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि।।

लघुजातक की भट्टोत्पल प्रणीत टीका प्रसिद्ध है। गणेश दैवज्ञ के अनुज अनन्त दैवज्ञ रचित टीका भी प्राप्त होती है।

7. सारावली -

सारावली ग्रन्थ के कर्ता आचार्य कल्याणवर्मा है। यह ग्रन्थ 54 अध्यायों में विभक्त है। ग्रन्थ में कल्याणवर्मा स्वयं को 'व्याघ्रपदीश्वर' संज्ञा देते है। उनका समय 550 शकाब्द अनुमानित है। कल्याणवर्मा के कथन से यह ज्ञात होता है कि आचार्य वराहमिहिर ने होराशास्त्र के विषयों का सार संक्षेप बृहज्जातक ग्रन्थ में किया परन्तु उसके द्वारा तेन सम्पूर्ण विषयों का वर्णन नहीं किया । अत एव उसकी पूर्ति हेतु इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया। जैसा कि ग्रन्थ में वर्णन किया-

राशिदशवर्गभूपतियोगायुर्दायतो दशादीनाम्।

विषयविभागं स्पष्टं कर्तुं न शक्यते यतस्तेन।।

कल्याणवर्मा का विषय चयन, प्रस्तुति सौष्ठवं और स्पष्टता अत्यन्त विशिष्ट है। वस्तुतः यह ग्रन्थ होरा रूपी तृष्णा के प्यासे जनों के लिये शीतल के जल के समान है।

8. श्रीपतिजातकपद्धति -

जातकपद्धति ग्रन्थ की रचना रत्नामाला ग्रन्थ के प्रणेता श्रीपति ने की। इस ग्रन्थ की भी रत्नामाला के समान माधव ने टीका लिखी। श्रीपति का समय 921 शकाब्द अनुमानित है।

9. सर्वार्थचिन्तामणि -

सर्वार्थचिन्तामणि वेङ्कटाद्रिदैवज्ञ द्वार प्रणीत होराग्रन्थ है। ये जातकपारिजात के प्रणेता वैद्यनाथ दैवज्ञ के पिता थें। इनका स्थितिकाल 1240 शकाब्द अनुमानित है।

10. जातकपारिजात -

जातकपारिजात केशवीय जातक ग्रन्थ प्रणेता केशव के गुरू वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत है। उनका स्थितिकाल 1300 शकाब्द अनुमानित है। जातकशास्त्र का यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की कपिलेश्वर विरचित सुधाशालिनी टीका प्रसिद्ध है।

11. केशवीयजातकपद्धति – नन्दिग्राम निवासी केशव दैवज्ञ ने इस ग्रन्थ की रचना की। इस लघुकाय ग्रन्थ का भी बहुत प्रचार हुआ। इस ग्रन्थ में 40 ही श्लोक हैं, ग्रन्थ के प्रक्षिप्त श्लोक में ऐसा वर्णन मिलता है। जैसा कि वर्णन है –

नन्दिग्रामे केशवो विप्रवर्यो योऽभूद्धोराशास्त्रसङ्घं विलोक्य।
तेनाक्तेयं पद्धतिर्जातकीया चत्वारिंशद् वृत्तबद्धा सुबोधा।।

इस ग्रन्थ में भावसाधन, भावसन्धि का आनयन, अयनादि बलसाधन, चेष्टाबल, इष्टकष्ट, दशान्तर्दशा, अष्टकवर्ग आदि विषय साररूप में निरूपित किये गये हैं। इस ग्रन्थ के केशव, विश्वनाथ, नारायण व दिवाकर रचित टीकाग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्राप्त होते है। इसका समय शकाब्द माना गया है।

12. जातकाभरण -

जातकाभरण आचार्य ढुण्ढिराज द्वारा 1460 शकाब्द में लिखा गया। वे नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र दैवज्ञ ज्ञानराज के शिष्य थें। इस ग्रन्थ में सभी फलित के विषयों का क्रमानुसार विवेचन किया गया है। सरलता और स्पष्टता इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। अतः सर्वसाधारण के लिये भी यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य सुधाकर द्विवेदी के मत से इस ग्रन्थ की श्लोक संख्या लगभग 2000 है।

13. जातकालङ्कार -

गणेशदैवज्ञ प्रणीत यह ग्रन्थ आकार में लघु है परन्तु जातकशास्त्र के सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थों में यह एक है। इस ग्रन्थ में छः अध्याय हैं – १.संज्ञा २.भाव ३.योग ४.विषकन्या ५.आयुर्दाय और ६.व्यत्ययस्थ भावफल। गणेश दैवज्ञ, आचार्य गोपाल के पुत्र और आचार्य शिवदास के पौत्र थें। यह ग्रन्थ 1535 शकाब्द में लिखा गया। इस ग्रन्थ की हरभानु विरचित टीका प्राप्त होती है।

14. होरारत्न –

सुविस्तृत यह ग्रन्थ आचार्य दामोदर के पुत्र बलभद्र दैवज्ञ ने 1557 शकाब्द में लिखा। इस

ग्रन्थ में सुविस्तृत दश अध्याय हैं। इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है कि इसमें 90 से अधिक ग्रन्थकार व ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ होरा विषयों का एक विश्वकोश ही कहा जा सकता है।

15. भावकुतूहल –

यह ग्रन्थ 1780 शकाब्द के समय आचार्य नीलाम्बर के अनुज व आचार्य शम्भुनाथ के पुत्र जीवनाथ ने लिखा। इस ग्रन्थ में 17 अध्याय हैं। काव्यात्मकता और भाव सौष्ठव इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। इस ग्रन्थ में दैवज्ञ जीवनाथ ने सामुद्रिक लक्षण संबंधित अध्याय भी सम्मिलित किया है जो कि अन्य होरा ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। इस ग्रन्थ की भाषा सरल और सुगम है। विषकन्या आदि योगों को परिहार भी इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया जो कि जातकालङ्कार आदि अन्य ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता।

16. जातकादेशमार्ग -

यह ग्रन्थ दाक्षिणात्य प्रदेश में बहुप्रचलित कतिपय फलितज्योतिष ग्रन्थों का सार संक्षेप रूप है। यह ग्रन्थ किस समय किसके द्वारा सङ्कलित किया गया यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है परन्तु 1500 शकाब्द से पूर्व ही लिखा गया ऐसा ज्ञात होता है। इस ग्रन्थ में संज्ञा, निषेक, बालारिष्ट, आयुर्दाय, मरणयोग, अष्टक-वर्ग, भावविचार, गोचरफल, दशाफल, भार्या विचार, आनुकूल्य, पुत्र चिन्ता, सन्तान चिन्ता, मिश्रक, आदि सप्तदश (17) प्रकरण हैं।

४.५ होराशास्त्र के प्रमुख विषय -

होरास्कन्ध के अन्तर्गत कौनसे विषयों का समावेश है इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता ग्रन्थ में वर्णन किया - **''होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्-स्थान-काल-चेष्टाभिरनेप्रकाबल- निर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजाति चेष्टापरिग्रहो निषेकजन्मकाल विस्मानपन प्रत्ययादेश सद्योमरण-आयुर्दाय-दशान्तर्दशा -अष्टकवर्ग-राजयोग-चन्द्रयोग-द्विग्रहादियोगानां नाभसादीनां च योगानां फलानि-आश्रय भावावलोकन-निर्याणगत्यूनूकानि तत्कालप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम्।।''**

जैसा कि पूर्व में बताय गया जातकशास्त्र अथवा होराशास्त्र में जन्मकाल व जन्मस्थान के आधार पर निर्मित कुण्डली के आधार पर फलादेश किया जाता है। अतः सभी जातक ग्रन्थों में सर्वप्रथम जन्मकुण्डली के मुख्यतत्त्वों का विवेचन किया जाता है यथा – राशि, नक्षत्र, ग्रह एवं भावों

का वर्णन। आकाशमण्डल में अनेक ज्योतिर्पिण्ड दिखाई देते है उनमें से जो सर्वदा स्थिरगतिक दिखाई देते है उन्हें नक्षत्र, ऋक्ष अथवा भ शब्द से जाना गया। यद्यपि ब्रह्माण्ड एक अविभाज्य, विभु और अनन्त है तथापि ज्योतिर्पिण्डों की स्थिति के अध्ययन हेतु आचार्यों ने समस्त ज्योतिषचक्र को 27 सताईस भागों में विभाजित किया (कुछ आचार्यों ने 28 भागों में भी विभाजित किया) उन्हें नक्षत्र कहा गया। उनमें भी प्रत्येक नक्षत्र को भी चार पादों में विभाजित किया। इस प्रकार से नक्षत्रों के कुल 108 पाद हुए। जब इन पादों को बारह भागों में विभाजित किया गया तब नौ पाद वाले एक भाग को 'राशि' कहा गया।

सूक्ष्मतया अवलोकन से पूर्वाचार्यों ने स्पष्टया जाना कि जन्म के समय जो जो भी जन्मनक्षत्र, राशि, लग्न, वार, तिथि आदि होते हैं वह मनुष्य भी उसी प्रकृति व स्वभाव वाला होता है। अतः उन सभी का सूक्ष्मतया ज्ञान आवश्यक होता है अतः जातक ग्रन्थों में सर्वप्रथम राशिशीलाध्याय व ग्रहस्वरूपवर्णनाध्याय प्राप्त होते है। उनमें राशीयों की संज्ञाये, स्वरूप, स्थान, सलिलादि संज्ञा, चतुष्पदादि संज्ञा, धातु मूल जीव आदि संज्ञा, ब्राह्मण आदि वर्ण, वर्ण(रंग), बलाबल, स्वामी, उच्च नीच मूलत्रिकोण आदि, दशवर्ग, भावों के संज्ञा, भावों के कारक, भावों की केन्द्र आदि संज्ञा, उदयमान, राशीयों के शुभाशुभ भाग, वास देश, प्लवत्व निरूपण आदि विषयों का वर्णन किया गया।

उसमें ग्रहों के संज्ञा स्वरूप गुणभेद आदि का वर्णन किया गया। जातकग्रन्थों में वर्णन किया गया कि न केवल ग्रह मनुष्य के शुभाशुभ का विवेचन करते है अपितु मनुष्य स्वयं ही ग्रहमय होता है जिसकी आत्मा सूर्य, मन चन्द्र, शक्ति मंगल, वाणी बुध, ज्ञान गुरु, सुख शुक्र और दुःख शनि है। जैसा कि वर्णन है –

कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचः।
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः।।

इनमें सूर्य, मंगल, शनि व राहु पाप ग्रह है, चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र सौम्य ग्रह हैं किन्तु क्षीण चन्द्र और क्रूर ग्रहों से युक्त बुध भी पाप ग्रह माने जाते है। राशि, भाव, उदयास्त, बाल-तरूण-वृद्धत्व अवस्था आदि के आधार पर ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं उनमें भाव मध्य में गत ग्रह पूर्ण और सन्धि में स्थित ग्रह कोई फल प्रदान नहीं करता है।

जातक के जन्म के समय जो राशि क्षितिज के पूर्वभाग में उदय होती है वहीं लग्नराशि कहलाती है। उसी से आरम्भ कर वामावर्त्त क्रम से द्वादश भाव जन्मकुण्डली में अवस्थित होते हैं।

जन्मकाल में जो लग्न होता है उससे आरम्भ कर द्वादश भावों में राशीयों की स्थापना की जाती है। यदि कोई जातक मिथुन राशि पूर्व में स्थित होने पर जन्म लेता है तो उसका मिथुन लग्न ही होता है अतः उसी से प्रारम्भ कर भावों की गणना की जाती है।

४.५.१ लग्नादि द्वादश भावों का परिचय –

जन्म कुण्डली में लग्न स्थान की आद्य, वपु या शरीर संज्ञा होती है। द्वितीय को धन भाव, तृतीय को सहज भाव, चतुर्थ को सुख भाव, पञ्चम को सुत भाव, षष्ठ को रिपु भाव, सप्तम को कलत्र भाव, अष्टम को मृत्यु भाव, नवम को धर्म स्थान, दशम को कर्म भाव, एकादश को आय भाव और द्वादश स्थान को व्यय भाव कहा गया। इस द्वादश भावों में ग्रहों व राशियों की स्थिति के अनुसार शुभाशुभफल किया जाता है। इन बारह भावों में लग्न चतुर्थ सप्तम व दशम को केन्द्र स्थान कहा गया।

होरा ग्रन्थों में ग्रह, भाव, राशि आदि के वर्णन के उपरान्त जातक के जन्म के विषय में विचार किया गया। अतः वियोनि जन्म, निषेक विधि, सुतादि योगकारक ग्रह स्थिति, क्लीब पुरुष स्त्री जन्म योग, दो तीन या अधिक सन्तति के जन्म के योग, नालवेष्टित सर्पवेष्टित जन्म आदि योग, प्रसूति काल ज्ञान, औरस क्षेत्रज आदि ज्ञापक ग्रह स्थिति, अनूढ, दत्तक, जारजत्व कारक योग, जन्मस्थान विचार, सूतिकागृह, दीप द्वार ज्ञान, उपसूतिका संख्या ज्ञान, जातक स्वरूप, चिह्न आदि का ज्ञान इत्यादि विषयों का चिन्तन किया गया। जन्म के उपरान्त सर्वप्रथम जातक की आयु का चिन्तन किया गया। यदि किसी मनुष्य की आयु ही न हो तो उसके जीवन के अन्य विषयों के फलादेश का चिन्तन व्यर्थ ही होता है। अतः सर्वप्रथम जातक की जन्म कुण्डली में आयु का ही चिन्तन किया जाता है। जैसा कि वचन है -

पूर्वमायुः परीक्षेत् पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
आयुहीनाञ्च नराणां लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।

अतः जातक ग्र में फलादेश कथन से पूर्व सर्वप्रथम जातक के अरिष्ट योग उनके भङ्गकारक योगों का वर्णन किया गया। आयु के भेद, अरिष्टकारक ग्रहस्थितियां, माता पिता सहित जातक के मरण के योग, गर्भ के मासों के स्वामी, अल्प मध्यम व दीर्घायु योग, अरिष्टभङ्गकारक ग्रहस्थितियां, चन्द्रकृत, शुभग्रहकृत, गुरुकृत, लग्नेशकृत और राहुकृत अरिष्टभङ्ग योग, अमितायु पूर्णायु आदि योगों का विशेष रूप से वर्णन किया गया।

यदि जातक की कुण्डली में बालारिष्ट योग हो टो वह 12 वर्ष तक ही जीवित रहता है, यदि बालारिष्ट न हो तो कितने वर्ष तक उसकी आयु होगी इस विषय में सहज जिज्ञासा होती है, अतः

होरा ग्रन्थों में आयु निर्धारण की अनेक विधियों का वर्णन किया गया। जैसे - पिण्डायु, निसर्गायु, लग्नायु, अंशकायु, रश्मिजायु, चक्रायु, दशायु इत्यादि। न केवल आयु का निर्धारण अपितु मृत्यु का कारण, स्थान व दिशा का ज्ञान भी वर्णित किया गया तथा मृत्यु के उपरान्त मृतक की गति किस प्रकार की होगी इस विषय में चिन्तन किया गया है।

आयु ज्ञान के उपरान्त फलादेश संबंधित विविध विषयों का वर्णन किया गया। जातक के शुभाशुभ काल का ज्ञान ग्रहों की दशान्तर्दशा के आधार पर ही होता है अतः आयु ज्ञान के उपरान्त दशान्तर्दशा साधन के विधियों का वर्णन किया गया । दशा के भी विविध प्रकारों का वर्णन किया गया। जैसे – विशोत्तरी दशा, अष्टोत्तरी दशा, षोडशोत्तरी दशा, चर दशा, योगिनी दशा, कालचक्र दशा इत्यादि।

४.५.२ ग्रहयोग परिचय व अन्य विषय –

कुछ ऐसे ग्रहयोग होते है जिनके प्रभाव से जातक विशेष शुभफल प्राप्त करता है। उन ग्रहों को राजयोग संज्ञा प्रदान की गई। उनमें भी पञ्चताराग्रहों के द्वारा निर्मित पञ्चमहापुरुषयोग विशेष रूप से सभी जातक ग्रन्थों में वर्णित किये गये। मंगल द्वारा रुचक योग, गुरु द्वारा हंस योग, बुध द्वारा भद्र योग, शुक्र द्वारा मालव्य योग और शनि द्वारा शश योग। यदि बृहस्पति चन्द्र स्थान से केन्द्र भावों में नीच व अस्त रहित हो तो गजककेसरी योग होता है। जैसा कि कहा है -

"केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्योगस्तदाहुर्गजकेसरीति"।

परन्तु कभी कभी राजयोग होते हुए भी जातक दरिद्र ही होता है। उसका कारण होता है राजयोग का भङ्ग। जातकपारिजात ग्रन्थ में चार योगों का वर्णन है जिनके द्वारा अन्य शुभ योग भी भङ्ग हो जाते हैं। उन्हें राजभङ्ग योग कहा गया जैसे रेका संज्ञक योग, दरिद्र योग, केमद्रुम योग आदि। जैसा कि जातक पारिजात ग्रन्थ में वर्णन किया गया -

केचिद्योगा राजयोगस्य भङ्गा केचिद्रेका नाम दारिद्रयोगाः।

केचित्प्रेष्याः के च केमद्रुमाख्यास्ते चत्वारो जातभङ्गाकराः स्युः ।

राजयोग के अतिरिक्त भी अनेक योग होते हैं जिनके द्वारा जन्मकुण्डली का फलादेश किया जाता है । उनके नाम निम्न प्रकार से है – रोग योग, भास्कर इन्द्र मरुत् बुध योग, सुनफा अनफा दुरुधरा योग, पारिजात आदि योग, अधम आदि योग, लग्नाधि योग, चन्द्राधि योग, वेशि वाशी आदि योग, अमला पर्वत काहल मालिका चामर मृदङ्ग शङ्ख भेरी श्रीनाथ शारद मत्स्य कूर्म खड्ग लक्ष्मी कुसुम कलानिधि हरिहरविधि अंशावतार आदि योग। योगों में बत्तीस ३२ नाभसयोगों का

विशेष महत्त्व वर्णित किया गया। उनमें आकृतियों के आधार पर निर्मित नौ कूट छत्र चाप आदि बीस आकृति योग, संख्या के आधार पर निर्मित वल्लकी दामिनी आदि सप्त संख्या योग, भावाश्रय के आधार पर निर्मित रज्जु मुशल आदि तीन योग, स्रक व सर्प संज्ञक दो दल योगौ। इस सभी योगों के भे ग्रहों की स्थिति के भेद से कुल 1800 भेद यवनाचार्यों ने बताये है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा -

यवनैस्त्रिगुणा हि षट्शती सा कथिता विस्तरतोऽत्र।

इसके उपरान्त दो, तीन, चार ग्रहों के संयोग से होने वाले फलों का वर्णन किया गया। जन्मकुण्डली में स्थित ग्रहों के अतिरिक्त तात्कालिक आकाश में स्थित ग्रह भी निरन्तर मनुष्य को प्रभावित करते हैं। उनके प्रभाव को जानने के लिये आचार्यों ने अष्टकवर्गविधि का निरुपण किया। अष्टकवर्ग पद्धति में राहु केतू के अतिरिक्त लग्नसहित सप्त ग्रहों के वर्गों का निर्माण किया जाता है। उन अष्ट वर्गों के द्वारा गोचर के ग्रहों का फलादेश किया जाता है।

जातक ग्रन्थों में स्त्रीयों की जन्म कुण्डली के आधार पर फलकथन कुछ भिन्न कहा गया इसी कारण जातक ग्रन्थों में पृथक् रुप से स्त्रीजातकाध्याय का वर्णन किया गया। उसके उपरान्त लग्नादि द्वादश भावों में, मेषादि द्वादश राशियों में, अश्विनी आदि सप्तविंशति नक्षत्रों में ग्रहों की स्थिति से होने वाले फलों का विस्तार से वर्णन किया गया। ग्रहों की दशान्तर्दशा के फल भी प्रायशः सभी प्रमुख जातकग्रन्थों में वर्णित किये गये है । ये ही मुख्य विषय सभी जातक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त कालचक्र दशा निरुपण, विषकन्य आदि योग, प्रव्रज्या योग, दृष्टि फल, प्रकीर्ण विषय, नष्ट जातक, द्रेष्काण स्वरुप, नैर्याणिक, राशिशील, बल साधन, सन्तान विचार इत्यादि विषय भी विविध ग्रन्थों में वर्णित किये गये है।

४.६ अप्रकाशित व अनुपलब्ध होरा ग्रन्थ –

कुछ अन्य भी अवशिष्ट हैं जिनका वर्णन इस पाठ में नहीं किया गया। उनमें से अधिकांश ग्रन्थ आज प्रकाशित रूप से उपलब्ध नहीं होते है। जैसे – सत्याचार्य प्रणीत ध्रुवनाड़ी ग्रन्थ, वराहमिहिर रचित स्वल्पजातकम्, लल्लाचार्य प्रणीत जातकसार, विद्यारण्य प्रणीत भावनिर्णय, अनन्तदैवज्ञ प्रणीत अनन्तजातकपद्धति, शिवदास दैवज्ञ प्रणीत जातकोत्तम, गुणाकर प्रणीत जातकादेश, नृहरिदैवज्ञ प्रणीत जातकसार, दैवज्ञदिवाकर द्वारा प्रणीत पद्मजातक, सोमदैवज्ञ प्रणीत पद्धतिभूषण, गोविन्द प्रणीत होराकौस्तुभ, नारायण दैवज्ञ प्रणीत होरासारसुधानिधि, राघव प्रणीत पद्धतिचन्द्रिका, गोविन्दाचारि प्रणीत साधनसुबोध, अनन्ताचार्य प्रणीत अनन्तफलदर्पण। कुछ

होराग्रन्थों के नाम केशवीयजातकपद्धति की टीका में उल्लिखित किये गये हैं, जैसे - श्रीधरपद्धति, महालुगिपद्धति, दामोदरपद्धति, रामकृष्णपद्धति, केशवपद्धति, बल्लयुपद्धति, होरामकरन्द और लघुपद्धति। इस प्रकार से ज्ञात होता है कि जातकग्रन्थों की एक सुविस्तृत परम्परा थी।

४.७ सारांश –

आधुनिक समय में होरा स्कन्ध ज्योतिष शास्त्र सर्वाधिक उपयोगी और प्रचलित स्कन्ध है। क्योंकि यह व्यक्तिविशेष का फलकथन करता है। सभी मनुष्य अपना भविष्य भूत वर्तमान का फल श्रवण करने के उत्सुक होते है। इसी कारण होराशास्त्र का वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचार है। होराशास्त्र के पञ्चभागों में सभी भाग पृथक् शास्त्र के रूप में विख्यात हो चुके हैं। अतः जातकशास्त्र ही आज के समय में होराशास्त्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। ताजिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, रमलशास्त्र आदि का तो अब पृथक अस्तित्व ही हो गया है। उन शास्त्रों के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं । इस पाथ में होराशास्त्र का परिचय, वैशिष्ट्य, विभाग, प्रमुख ग्रन्थ, ग्रन्थकार और मुख्य विषयों का अत्यन्त संक्षेप से परिचय प्रदान किया गया।

अभ्यास प्रश्न –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न -

1. किस शब्द के आदि व अन्तिम वर्ण के लोप से 'होरा' शब्द बना -

(क) महोरात्र (ख) अहोरात्र (ग) सहोरात्र (घ) दहोरात्र

2. विधाता द्वारा ललाट पर लिखित अक्षरमालिका को कौन पढता है?

(क) राजा (ख) कृषक (ग) दैवज्ञ (घ) सेनापति

3. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ का अनुसरण कर साररुप में रचित ग्रन्थ कौनसा है?

(क) सारावली (ख) बृहज्जातक (ग) लीलावती (घ) लघुपाराशरी

4. जैमिनीसूत्रग्रन्थ में कितने अध्याय है?

(क) चार (ख) तीन (ग) पांच (घ) आठ

5. सारावली ग्रन्थ के कर्ता कौन है?

(क) आचार्य वराहमिहिर (ख) भास्कराचार्य (ग) गणेश दैवज्ञ (घ) आचार्य कल्याण वर्मा

6. जीवनाथ द्वारा रचित जातक ग्रन्थ कौनसा है?

(क)भावकुतूहल (ख)जातकालङ्कार (ग)लघुजातक (घ)जातकपद्धति

7. जन्मकुण्डली का द्वितीय भाव कहलाता है -

(क) मृत्यु भाव (ख) कर्म भाव (ग) धन भाव (घ) सन्तान भाव

8. जन्मकुण्डली में सर्वप्रथम क्या विचारणीय है?

(क) राजयोग (ख) आजीविका (ग) आयु (घ) सन्तति

9. जन्मकाल में जो राशि क्षितिज के पूर्व भाग में उदय होती है, वह होती है -

(क) लग्न राशि (ख) जन्म राशि (ग) काल राशि (घ) पर राशि

10. जातकशास्त्र का विषय नहीं है -

(क) बालारिष्ट (ख) दशान्तर्दशा (ग) अहर्गण साधन (घ) अष्टकवर्ग

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न -

1. ज्योतिषशास्त्र के किस स्कन्ध में व्यक्ति विशेष की जन्मकुण्डली के माध्यम से फल प्रतिपादन किया जाता है?
2. कौनसा शास्त्र आपदा रूपी समुद्र में नाव समान सहायता करता है?
3. बृहज्जातकग्रन्थ ग्रन्थ के कर्त्ता कौन है?
4. आचार्य वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत जातक ग्रन्थ कौनसा है?
5. होरारत्न किसके द्वारा रचित है?
6. आकृतियोग कितने होते हैं?
7. व्ययभाव कौनसा है?
8. शुक्र के द्वारा निर्मित महापुरुषयोग कौनसा है?
9. जातकपारिजातग्रन्थ में राजयोग भङ्ग करने वाले कितने योग कहे गये हैं?
10. केशवीयजातकपद्धति ग्रन्थ में कितने श्लोक हैं?

४.८ पारिभाषिक शब्दावली –

अहोरात्र – अहः अर्थात् दिन व रात्र अर्थात् रात्रि, दिन व रात्रि मिलाकर होने वाला कुल समय,

प्राचीन समय में भारत में सूर्योदय से दिन का प्रारम्भ माना जाता था, अतः एक सूर्योदय से अग्रिम दिन के सूर्योदय तक का समय अहोरात्र कहलाया

होरा – अहोरात्र शब्द के आदि 'अ' व अन्तिम 'त्र' अक्षर के लोप से होरा शब्द बना। मुख्य रूप से सम्पूर्ण अहोरात्र मे २४ होरायें होती हैं अतः अहोरात्र मान का २४वा भाग एक होरा का मान होता है। यहीं मान्यता अनन्तर सम्पूर्ण विश्व में स्वीकृत की गई अतः आज भी एक दिन में २४ घण्टे माने जाते है। अतः कहा जाता है कि अंग्रेजी का 'HOUR' शब्द 'HORA' का ही बिगडा हुआ स्वरूप है। एक लग्न का औसत मान लगभग २ घण्टे के तुल्य होता हैं अतः राशि के आधे मान को भी होरा कहा गया। फलित शास्त्र का नाम भी 'होरा' कहा गया।

दैवज्ञ – जो 'दैव' अर्थात् नियति को जानता हो उसकी दैवज्ञ संज्ञा दी गई। दैवज्ञ के गुणों का वर्णन आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में विस्तार किया। दैवज्ञ मुख्य रूप से ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों का मर्मज्ञ होता है।

नाभस – जो योग नभ अर्थात् आकाश में ग्रह, राशि, भावों के संयोग से उत्पन्न होते है, उन्हें नाभस योग कहा गया।

लग्न – किसी भी समय अपने स्थान (स्व खमध्य) से राशि चक्र का जो भाग पूर्वी क्षितिज पर लगा दिखाई देता है वह लग्न कहलाता है। सिद्धान्त ज्योतिष की भाषा में क्रान्ति वृत का जो भाग क्षितिज वृत्त को पूर्व ममे स्पर्श करता है लग्न बिन्दु कहलाता है।

आयुर्दाय – आयु साधन से संबंधित विषय, जातक की आयु कितने वर्ष की होगी? यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है, इसका विचार जातक ग्रन्थों में आयुर्दाय अध्याय में किया गया

विषकन्या योग – ऐसे योग जिनमें उत्पन्न कन्या पतिघातिनि होती है, अर्थात् उसे वैधव्य का दुःख भोगना पडता है, पति हेतु मृत्युकारक होने के कारण ऐसी कन्या को विषकन्या कहा गया

राजभङ्ग योग – ऐसे योग जो कि जन्म कुण्डली में बने हुए राजयोगों को भे समाप्त कर दरिद्रता प्रदान करते है, उन्हें राजभङ्ग योग कहा गया

४.९ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर –

1.	(ख)	6.	(क)
2.	(ग)	7.	(ग)

3.	(घ)	8.	(ग)
4.	(क)	9.	(क)
5.	(घ)	10.	(ग)

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर -

1. होरा स्कन्ध में
2. जातक
3. आचार्य वराहमिहिर
4. जातकपरिजात
5. बलभद्र दैवज्ञ
6. बीस
7. द्वादश भाव
8. मालव्य योग
9. चार
10. चालीस (४०)

४.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- भारतीय ज्योतिष, लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, प्रकाशन – उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, २००२
- भारतीयज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहालविरचितः, प्रकाशन - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2003 ई.।
- बृहज्जातकम्, व्याख्या - केदारदत्त जोशी, प्रकाशन-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 2002 ई.।
- जातकपारिजातः दैवज्ञवैद्यनाथविरचितः, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री, व्याख्या - पं. मातृप्रसादशास्त्रि, प्रकाशन- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी - 2004 ई.।

४.११ सहायक पाठ्य सामग्री –

- सारावली, श्रीमत्कल्याणवर्मविरचिता, व्याख्या - मुरलीधर चतुर्वेदी, प्रकाशन - मोतीलाल

बनारसीदास, 2007 ई.।

- जातकालङ्कारः, गणेशदैवज्ञविरचितः, व्याख्या - डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008 ई.।
- भावकुतूहलम्, श्री जीवनाथकृत, व्याख्या- डॉ. हरिशङ्कर पाठक, प्रकाशन - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004 ई.।
- लघुपाराशरी, व्याख्या - डॉ. सुरकान्त झा, प्रकाशन - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2005 ई.।
- जैमिनीसूत्रम्, व्याख्या - पं. सीताराम शर्मा, प्रकाशन - चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-2007 ई.।
- बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, व्याख्या - पं. देवचन्द्र झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी - 2012 ई.।

४.१२ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. आचार्य वराहमिहिर रचित होरा ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।

२. होरा स्कन्ध के वैशिष्ट्य का वर्णन करें।

३. होरा स्कन्ध में वर्णित मुख्य विषयों का प्रतिपादन करें।

४. जातक पारिजात व जातकालङ्कार ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।

५. जैमिनी सूत्र ग्रन्थ का वैशिष्ट्य लिखें।

६. नाभस योग, अरिष्ट योग व राजभङ्ग योग का परिचय प्रदान करें।

७. पञ्चमहापुरुष योगों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।